सम्राट् जार्ज पंचम

३४

भारतीय इतिहास की कहानियाँ

(बिहार प्रान्त और मध्य प्रदेश के शिक्षा विभागों द्वारा स्वीकृत)
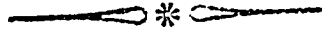
बी० एन० महता, बी० ए०, बी० टी०

('भारतवर्ष का इतिहास' आदि के लेखक)

नवीन संस्करण

प्रकाशक

यूनीवर्सिटी बुक डिपो,

आगरा।

द्वितीय संस्करण] सन् १९३० [मूल्य ॥।=)

प्रकाशक—

यूनीवर्सिटी बुक डिपो,

आगरा।
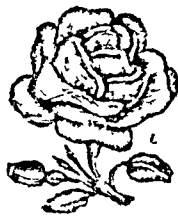
मुद्रक—

सत्यव्रत शर्मा,

शान्ति प्रेस, शीतलागली, आगरा।

दूसरे संस्करण की भूमिका

दो वर्ष के भीतर ही इस पुस्तक का पहला संस्करण समाप्त हो गया। इस के लिए हम अपने कृपालु पाठकों के बहुत आभारी हैं। इस संस्करण में कतिपय परिवर्तन कर दिये गये हैं। आशा है कि वे पाठकों को रुचिकर होंगे। लगभग सभी पाठों में उन्हें अधिक रोचक बनाने के उद्देश्य से कुछ कथाएँ और बढ़ा दी गई हैं और अन्य आवश्यक परिवर्तन कर दिये गये हैं, भाषा भी जहाँ-तहाँ सुधार दी गई है। प्रत्येक पाठ के अन्त में प्रश्न जोड़ दिये गये हैं, और चित्रों की संख्या पहले से दूनी कर दी गई है।

अभी हाल में बिहार प्रान्त और मध्य प्रदेश के शिक्षा-विभागों ने इस पुस्तक को अपने स्कूलों में स्थान देने की कृपा की है। इस के लिए हम उन के अत्यन्त कृतज्ञ हैं।

१५—८—३०] प्रकाशक।

विषय-सूची

चित्र-सूची

पृष्ठ

भारतीय इतिहास की कहानियाँ

अध्याय १

हमारी मातृभूमि

बालको ! क्या तुम बतला सकते हो कि तुम्हारी मातृभूमि कौन सी है ? तुम्हारा प्यारा देश कौन सा है ? किस देश में तुमने जन्म लिया है ? किस देश के अन्न-जल से तुम्हारे शरीर का पालन-पोषण होता है ? और अन्त में मरने के पीछे तुम्हारी देह के कण किस देश की मिट्टी मे मिल जायँगे ?

इन सब प्रश्नो का उत्तर एक ही हो सकता है। वह है—"हिन्दुस्तान"। क्या तुम बतला सकते हो कि हमारे देश का यह नाम कैसे पड़ा ? आज से कोई पाँच हज़ार वर्ष पहले जब आर्य लोग इस देश मे उत्तर-पश्चिम से आये, तो सब से पहले वे सिन्धु नदी के किनारे बसे। धीरे-धीरे इस नदी के आस-पास के देश का भी यही नाम पड़ गया। कालान्तर में 'सिन्धु' शब्द बिगड़ कर 'हिन्दु' हो गया, और विदेशी लोग इस देश के निवासियो को 'हिन्दू' और देश को 'हिन्दुस्तान' कहने लगे। इस देश का दूसरा नाम 'भारतवर्ष' है। यह प्राचीन नाम है। यह नाम इसलिए पड़ा कि यहाँ पर 'भरत' नामक एक बड़े प्रतापी और गौरवशाली राजा राज्य कर चुके हैं। इस देश का एक प्राचीन नाम 'आर्यावर्त्त' भी है। इस शब्द का अर्थ है, 'आर्यों का देश'।

हमारा देश बड़ा ही विलक्षण और प्राचीन है। पुराने समय मे इस देश ने बहुत उन्नति कर ली थी, इस बात का हम सब को गर्व होना चाहिए। साहित्य, विज्ञान, कला, व्यापार आदि सभी बातो मे भारतवासी संसार की किसी भी जाति से पिछाड़ी न थे। अनेक बातो मे यह देश संसार के सब देशो से आगे था। इसकी सभ्यता बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। जिस समय यूरोप के निवासी निरे जंगली थे, हमारा देश बहुत सभ्य हो चुका था। यहाँ के व्यापारी सारे सभ्य संसार से व्यापार करते थे. और दूर-दूर देशो की यात्राएँ करते थे। अनेक विद्याएँ यहीं से अन्य देशो ने सीखीं। इस बात का हम सब को गर्व होना चाहिए कि हम भारत की सन्तान है। परन्तु वर्त्तमान काल मे कई कारणो से यह देश दूसरे उन्नत देशो से बहुत पीछे पड़ गया है।

भारतवर्ष बहुत बड़ा देश है। यहाँ ३२ करोड़ मनुष्य रहते हैं। यह इतना बड़ा है कि इस को कुछ लोग तो महाद्वीप कहने लगे है। यहाँ की भूमि बड़ी उपजाऊ है। देश खूब हरा-भरा है। धरती मे उपज बहुत अच्छी होती है। इसी लिए प्राचीन समय मे यहाँ के लोग बहुत धनी हो गये थे। यहाँ की अपार सम्पत्ति और अटूट धन को देख कर ही मध्य एशिया के उजाड़ देशो के निवासियो के मुँह मे पानी भर आता था, और यही कारण है कि उन्होने इस देश पर अनेको बार आक्रमण किये।

महाद्वीप एशिया के दक्षिण मे भारतवर्ष एक बड़ा प्रायद्वीप है जो दूर तक समुद्र मे चला गया है। इसके उत्तर मे हजारो मील तक भूमि चली गई है, और दक्षिण में सहस्रो मील तक विस्तीर्ण समुद्र है जिसे हिन्द महासागर कहते हैं। इस प्रकार भारतवर्ष को प्रकृति ने ही चारों ओर से सुरक्षित बनाया है।

भारतवर्ष के समुद्र मे दूर तक चले जाने से वहाँ पर महासागर के दो भाग हो गये है—पूर्व में बंगाल की खाड़ी और पश्चिम में अरब सागर।

अपने दर्जे से टँगे हुए भारतवर्ष के नक़शे को बड़ी सावधानी से देखो। देश के उत्तर की ओर एक विशाल दीवार है, जिसका नाम हिमालय पर्वत है। यह देश की उत्तरी सीमा पर पश्चिम से पूर्व तक फैला हुआ है। इसकी शक्ल तलवार की सी है। यह १,५०० मील लम्बा है, और इसकी चौड़ाई १५० से २०० मील तक है। यह पर्वत संसार भर में सब से ऊँचा है। बहुत सी चोटियाँ ४ मील से भी अधिक ऊँची हैं। सब से ऊची चोटी ऐवेरैस्ट है, जिसकी ऊँचाई समुद्र तल से २६,१४१ फ़ुट अर्थात् ५½ मील अनुमान की जाती है। ऊँची चोटियों पर ठण्ड के कारण सदा बर्फ रही आती है। इसी कारण इसका नाम 'हिमालय' (हिम का घर) पड़ा है। निचले भागो पर नैनीताल, शिमला आदि कई पहाड़ी बस्तियाँ है, जहाँ गरमियों मे धनी पुरुष मैदानों की गरमी से बचने के लिए जाते है। कश्मीर की सुन्दर घाटी, जिसकी उपमा स्वर्ग से दी जाती है, यही है। यहाँ हिन्दुओ के अनेक तीर्थ भी हैं, जैसे बद्रीनाथ, केदारनाथ, कैलाश आदि। यह पर्वत इतना ऊँचा है कि उत्तर से हमारे देश मे इन को पार करके आज तक कोई बैरी हमारे देश मे नहीं आ सका है। हिमालय के उत्तर में स्थित तिब्बत देश के रहने वाले भी इसीलिए भारतवासियों से रीति-रिवाज, बोल-चाल, वेश-भूषा आदि मे बिल्कुल भिन्न हैं।

हिमालय पर्वत से हमारे देश को अनेक लाभ हैं। बैरी के आक्रमणो को रोकने के अतिरिक्त इस के द्वारा ही हमारे देश में

वर्षा होती है। जो जल भरी हवाएँ हिन्द महासागर से आती है, उन्हे यह रोक कर ऊपर उठा देता है। इस प्रकार वे ठंडी हो कर हमारे देश मे पानी बरसा देती हैं। तनिक विचार तो करो कि यदि हमारे देश मे वर्षा न होती, तो इस की क्या दशा होती! गरमियो से जब धरती झुलस जाती है और लू चलती है, तब गङ्गा, सिधु आदि नदियो मे हिमालय से ही पानी आता है जहाँ गर्मी के कारण वर्फ पिघलने लगती है। हिमालय से ही नदियाँ उस महीन रेती व मिट्टी को ला कर मैदान पर बिछा देती है, जिस पर इतनी उम्दा फसले उगती है। यह पर्वत उत्तर से आने वाली उन ठण्डी हवाओ को भी रोक लेता है, जिन के कारण तिब्बत एक उजाड़ देश हो गया है। हिमालय में गोरखा आदि जातियाॅ पलती है, जो बैरियो से देश की रक्षा करती हैं।

परन्तु भारत के उत्तर-पूर्व और उत्तर-पश्चिम में हिमालय की शाखाएँ बहुत नीची हो गई है। उत्तर-पश्चिम के पहाड़ो के नाम सुलैमान और किरथर है। इन मे कई घाटियाँ हैं। इन मे दो बहुत प्रसिद्ध है—ख़ैबर दर्रा और बोलन दर्रा। इन दर्रों को पार कर के बैरियों ने अनेक बार भारतवर्ष पर आक्रमण किये हैं। ये वास्तव में भारत के उत्तर-पश्चिमी फाटक हैं। उत्तर-पूर्व की पहाड़ियो के नाम खासी, जयन्तियाँ आदि है।

हिमालय के दक्षिण मे एक बहुत 'लम्बा-चौड़ा मैदान' है। यह मैदान संसार के इतिहास मे बड़ा प्रसिद्ध रहा है। भारत का सब से अधिक उपजाऊ और घना बसा हुआ भाग यही है। इस को भारत की दो प्रसिद्ध नदियाँ गङ्गा और सिन्धु सींचती हैं। सिन्धु की मुख्य सहायक नदियाँ पाँच है—सतलज, व्यास, रावी चिनाब और झेलम। जिस देश को ये पाँचो नदियाँ सींचती है

उसे इसी लिए पञ्जाब कहते हैं। गङ्गा नदी इस विस्तीर्ण मैदान के पूर्वी भाग में बहती है। इस नदी से भारतवासियों को बहुत लाभ पहुँचा है। इस का जल बहुत स्वास्थ्यकारक है। इस के पानी से हज़ारों एकड़ धरती जोती-बोई जाती है। बहुत प्राचीन काल से इस के किनारो पर अनेक बड़े बड़े नगर बसे हुए है, जैसे प्रयाग (इलाहाबाद), काशी (बनारस), पटना आदि। इन में से अधिकांश हिन्दुओ के प्रसिद्ध तीर्थ हैं, जहाँ प्रति वर्ष लाखों यात्री जाते हैं। गङ्गा की उपयोगिता के कारण ही यह नदी बहुत पवित्र मानी जाती है। करोड़ों हिदुओं की यह 'गंगाजी' है : वे देवी के समान इसकी पूजा करते हैं। इस की मुख्य सहायक जमुना है।

गङ्गा-सिन्धु के मैदान के दक्षिण में 'दक्षिण' का देश है। यह पठार है। इसका आकार तिकोना है। इसकी उत्तरी सीमा पर विन्ध्याचल और सतपुड़ा की श्रेणियाँ हैं, और नमदा तथा ताप्ती नदियाँ हैं। नमंदा नदी भी हिन्दुओं की पवित्र नदी है। पठार के पूर्व में 'पूर्वी घाट' और पश्चिम में 'पश्चिमी घाट' नाम के पहाड़ है। पठार को तीन बड़ी नदियाँ सींचती हैं—गोदावरी, कृष्णा और कावेरी। पठार के पूर्व और पश्चिम में सँकरे मैदान है। इन्हे 'समुद्रतट के मैदान' कह सकते हैं। ये भी बहुत उपजाऊ हैं।

भारतवर्ष के पूर्व में 'ब्रह्मा' का देश है। यह देश पहाड़ी है, और यहाँ के निवासी बौद्ध है जो हम लोगों से भिन्न हैं।

हमारा देश विषुवत् रेखा के निकट है। इस कारण यहाँ का जलवायु बहुत गरम है। गरम जलवायु का प्रभाव स्वास्थ्य पर अच्छा नही पड़ता। गर्मी के दिनो मे अधिक काम नही किया जा सकता, और इसीलिए तुम्हारे स्कूल मे गरमी की छुट्टियाँ हुआ

करती है। परन्तु कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि भारतवासी निर्बल है। यह बात बिल्कुल ठीक नही है। भारतवासियो ने इतिहास के प्रारम्भ से बड़े-बड़े युद्धो मे सदा वीरता दिखाई है। जितने वीर मनुष्य इस देश मे पैदा हुए है उतने संसार के किसी भी देश से न हुए होगे। राजपूतो की वीरता ने, जो देश के अत्यन्त गरम भाग मे रहते हैं, देश के मस्तक को संसार के सामने सदा ऊचा रक्खा है। सिक्ख और मराठे भी देश के गरम भागो में रहते है, परन्तु बड़े बहादुर होते हैं। गत महायुद्ध मे भी भारत-वासियो की वीरता की प्रशंसा ससार की सभी मुख्य जातियो ने मुक्तकण्ठ से की है। अनेक भारतीयो ने 'विक्टोरिया क्रास' नामक पदक भी प्राप्त किया है, जो इससे पहले किसी भारतीय को नही मिला था और जो अत्यन्त सन्मान-सूचक पद समझा जाता हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि जब-जब भारतवासियो को अपनी योग्यता दिखाने का अवसर मिला है, वे संसार की अन्य जातियो से किसी प्रकार भी पीछे नही रहे है। व्यापार, विज्ञान, साहित्य, कला-कौशल, युद्ध-कुशलता, राजनीति आदि सभी विषयो मे भारतवासी सदा बहुत आगे रहे है।

हमारे देश मे तीन मुख्य ऋतुएँ होती है—गरमी, बरसात और जाड़ा। यहाँ गरमी ज़ोर से पड़ती है। बरसात के दिनो में मौसिमी हवाओ (मानसून) से प्रायः सारे ही देश मे वर्षा हो जाती है। उत्तम वर्षा और उर्वरा भूमि होने के कारण यहाँ बहुत अच्छी फसले पैदा होती है। इन से केवल अपने ही निवासियो का पेट नही भरता, वरन् यह देश अन्य देशो के रहने वालो का भी उदर-पोषण करता है।

भारतवर्ष खेतिहर देश है और यहाँ के अधिकांश निवासी किसान हैं। ये लोग प्रायः बड़े निर्धन और संतोषी होते हैं, और बड़े परिश्रम से खेतीबारी करते हैं।

अपने देश की प्रशंसा में नीचे लिखी कविताएँ कण्ठस्थ कर लो, और अपने गुरुजी को सुनाओ।

(१)

सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा।
हम बुलबुले हैं इसकी यह गुलसिताँ हमारा।
ग़ुरबत मे हो अगर हम रहता है दिल वतन में।
समझो हमें वहीं ही, दिल हो जहाँ हमारा॥
पर्वत वो सब से ऊँचा हमसाया आसमाँ का।
वह संतरी हमारा वह पासबाँ हमारा॥
गोदी में खेलती हैं इसकी हज़ारों नदियाँ।
गुलशन है जिसके दम से रश्के जिनाँ हमारा॥
यूनानो मिस्र रोमाँ सब मिट गये जहाँ से।
अब भी मगर है बाक़ी नामो निशाँ हमारा॥
मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना।
हिन्दी है हम वतन है हिन्दोस्ताँ हमारा॥
इक़बाल कोई महरम अपना नहीं जहाँ में।
मालूम क्या किसी को दर्दे निहाँ हमारा॥

(२)

हमको प्यारा हिन्दुस्तान।
देश हमारा हिन्दुस्तान॥
इधर हिमालय खड़ा हुआ है।
महाबली सा अड़ा हुआ है॥

उधर अथाह अपार समुन्दर;
मस्त चरण पर पड़ा हुआ है ॥

दोनो पहरेदार महान् ।
देश हमारा हिन्दुस्तान ॥

बहती है गङ्गा की धारा ।
जिसका परम पुनीत किनारा ॥
यमुना, सिन्धु, नर्मदा आदिक ।
दिखलाती सब अजब नज़ारा ॥

करते विविध जीव कल-गान ।
देश हमारा हिन्दुस्तान ॥

हरे भरे सब प्रान्त हमारे ।
पशु-पक्षी है सुन्दर सारे ॥
ऋतुएँ सदा सजाती रहतीं,
शोभा लखते रवि शशि तारे ॥

कहते यह है स्वर्ग समान् ।
देश हमारा हिन्दुस्तान ॥

खेतों मे बस्ती के बाहर ।
खड़े हुए है अगणित खँडहर ॥
पैदा करते हैं जोश दिलो मे,
बीते युग की याद दिलाकर ॥

हम हैं वीरो की सन्तान ।
देश हमारा हिन्दुस्तान ॥

प्रश्न

१ तुम्हारी मातृ-भूमि कौन सी है ? उसके क्या-क्या नाम हैं ? क्या तुम बता सकते हो कि उसके ये नाम कैसे पड़े ?

२ प्राचीन काल में हमारे देश की सभ्यता कैसी थी ?

३ हिमालय से हमारे देश को क्या लाभ हैं ?

४ विदेशी लोगों ने हमारे देश पर आक्रमण क्यों किये ?

५ धनी पुरुष मैदानों की गरमी से बचने के लिए क्या करते हैं ?

६ ख़ैबर और बोलन दर्रे कहाँ हैं ?

७ देश का सब से अधिक उपजाऊ और घना बसा हुआ भाग कौन सा है ?

८ भारत के बड़े मैदान को कौन-कौन बड़ी नदियाँ सींचती हैं ?

९ पंजाब का यह कैसे नाम पड़ा ?

१० गङ्गा बहुत पवित्र नदी क्यों मानी जाती है ?

११ दक्षिण भारत की धरती कैसी है ? उसमें कौन-कौन बड़ी नदियाँ बहती हैं ?

१२ ब्रह्मा के निवासियों का क्या मत है ?

१३ तुम्हारे स्कूल में गरमी की छुट्टियाँ क्यों होती हैं ?

१४ सिद्ध करो कि गरम देश में रहते हुए भी भारतवासी साहसी और वीर हैं ।

१५ हमारे देश में कौन कौन तीन ऋतुएँ होती हैं ?
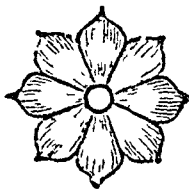
अध्याय १

रामायण की कथा

(हमारे वीर पुरखे)

बालको ! तुम ने राम-लीला अवश्य देखी होगी। इस मे महाराज रामचन्द्रजी की कथा दिखाई जाती है। इस पाठ मे हम तुम को उन्ही प्रतापी रामचन्द्रजी का हाल बतायेगे।

प्राचीन समय मे भारतवर्ष मे 'कौशल' नाम का एक प्रान्त था, जिसे आजकल अवध कहते है। उस समय इस प्रान्त की राजधानी सरयू नदी के किनारे पर स्थित अयोध्या नगरी थी। यहाँ सूर्यवंशी क्षत्रिय राजा राज करते थे। इस वंश मे इक्ष्वाकु, अज, रघु, हरिश्चन्द्र आदि अनेक प्रसिद्ध राजाओ के अतिरिक्त दशरथ नाम के एक राजा भी बहुत विख्यात हो गये है। यह बड़े प्रतापी और तेजस्वी थे। इन के कौशल्या, सुमित्रा, और कैकेयी तीन रानियाँ थी। परन्तु तीनो रानियो मे से किसी से भी इन के कोई सन्तान न थी। जब राजा वृद्ध हो आये और सन्तान का होना उन्हे असम्भव प्रतीत हुआ, तो वह बड़े दुखी हुए। अन्त में महाराज ने एक ऋषि द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ कराया, जिस से उन के चार पुत्र उत्पन्न हुए। बड़ी रानी कौशल्या के राम, कैकेयी के भरत, और सुमित्रा के दो पुत्र लक्ष्मण और शत्रुघ्न पैदा हुए। इन चारो पुत्रो मे राम सब से बड़े थे।

जब राजकुमार बड़े हुए, तो वे कुल के गुरु वशिष्ठ के यहाँ विद्याध्ययन के लिए भेजे गये। राजकुमारो ने थोड़े ही समय मे

विद्याध्ययन के अतिरिक्त धनुष-बाण, अस्त्र-शस्त्र आदि चलाने की सारी ही विद्याएं सीख ली। इस प्रकार राजा दशरथ अपने राजकुमारो को सब प्रकार निपुण देख कर अति प्रसन्न थे।

इन्ही दिनो मे एक ऋषि विश्वामित्र राजा दशरथ के यहाँ पधारे और उन्होने इच्छा प्रकट की कि, "हे राजन्! हमारे यज्ञ मे राक्षस लोग बहुत विघ्न डालते है। अतएव आप अपने राम और लक्ष्मण दो राजकुमारो को कुछ समय के लिए यज्ञ की रक्षा करने के हेतु दे दीजिये।" पहले तो महाराजा ने कुछ आनाकानी की, परन्तु वशिष्ठ जी के समझाने पर उन्होंने दोनो राजकुमार विश्वामित्र को सोप दिये।

इस प्रकार राम और लक्ष्मण को प्राप्त करके विश्वामित्र अपने आश्रम को लौट आये। आश्रम को आते हुए अकस्मात् ताड़का नामक राक्षसी दिखाई दी, जो यज्ञ मे बहुत बाधा डाला करती थी। विश्वामित्र ने दोनों राजकुमारों को संकेत करके बतलाया कि "इस राक्षसी का अन्त कर दो"। दोनो भाइयो ने शीघ्र ही अपने धनुष सँभाले, और उसको मार डाला। इस के पीछे राजकुमारो ने यज्ञ में विघ्न डालने वाले सुबाहु और अन्य कई राक्षसो का विध्वंस किया। इस तरह ऋषि अपने यज्ञ को सम्पूर्ण कर ही पाये थे कि उन्हे जनकपुर के राजा जनक का उनकी राजकुमारी सीता के स्वयंवर के उत्सव मे सम्मिलित होने का निमन्त्रण मिला। ऋषि राम और लक्ष्मण को भी अपने साथ जनकपुर ले गये, और दोनो राजकुमारो सहित स्वयंवर सभा में सम्मिलित हुए।

महाराज जनक के पास एक बहुत प्राचीन धनुष था. जो उन्हे शिवजी ने प्रदान किया था। "जो इस धनुष को तोड़ देगा

उसी के साथ सीता का विवाह होगा"—ऐसी महाराज जनक की प्रतिज्ञा थी। जितने राजे-महाराजे आये, किसी से भी धनुष उठा तक नहीं। लंका का वीर राजा रावण उस धनुष को उठाना तो

रामचन्द्रजी का धनुष तोड़ना

अलग रहा, तिल भर हटा भी न सका। यह देख कर राजा जनक को बड़ा क्षोभ हुआ, और वह कह उठे कि "वीर विहीन मही मैं जानी"—मुझे मालूम होता है कि इस पृथ्वी पर अब कोई

वीर नहीं रहा। इतने में विश्वामित्र की आज्ञा से रामचन्द्रजी उठे, और उन्होंने धनुष को उठा कर उसके दो टुकड़े कर दिये। सीता का विवाह राम के साथ हो गया। राजकुमार राम सीता सहित अयोध्या पहुँच कर आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे। राजा दशरथ भी बड़े प्रसन्न हुए।

अब राजा दशरथ अधिक वृद्ध हो चले थे। इसलिए उनकी इच्छा हुई कि हम अपना सारा राज-पाट अपने सब से योग्य राजकुमार राम को सोप दें। उनकी सारी प्रजा तथा उनके सभी सचिव-सामान्तो ने भी उन्हे ऐसा करने की सम्मति दी। फिर क्या था! राज्याभिषेक का दिवस नियत किया गया, और सारी अयोध्या नगरी में बड़ी धूम-धाम से उत्सव मनाये जाने लगे। दैवात् राज्याभिषेक के कुछ ही दिन पहले भरत शत्रुघ्न को साथ ले कर अपनी ननसाल चले गये थे। इस कारण राम का राज्याभिषेक भरत की अनुपस्थिति में होने वाला था। मंथरा नामक एक दुष्टा दासी रानी कैकेयी के पास गई, और उसको उसने ऐसी उल्टी पट्टी पढ़ाई की जिस से राम का राज-तिलक उसे नहीं भाया। उसने महाराज दशरथ से दो वरदान माँगे—प्रथम तो यह कि राम को १४ वर्ष के लिए वन मे भेज दिया जाय, और दूसरे, भरत को राजगद्दी दी जाय।

महाराज दशरथ इन दोनो माँगो को सुन कर बहुत दुखी हुए। राजा दशरथ बात के बड़े धनी थे, इसलिए मना न कर सके। सारे नगर मे उदासी छा गई। राजकुमार राम को जब यह सारा हाल मालूम हुआ, तो वह पिता के वचनों को पूरा करने के लिए उनकी आज्ञा मान कर वन जाने के लिए तैयार हो गये। सीता और लक्ष्मण ने भी उनके साथ जाने के लिए बहुत हठ

किया। इसलिए सीता और लक्ष्मण को साथ ले कर राम वन को चल दिये। महाराज दशरथ का एक मंत्री, जिसका नाम सुमन्त था, तीनो व्यक्तियो को रथ मे बैठा कर वन मे छोड़ आया। सीता और लक्ष्मण सहित राम गङ्गा को पार करते हुए चित्रकूट पहुँचे, और वहीं निवास करने लगे। इधर महाराज
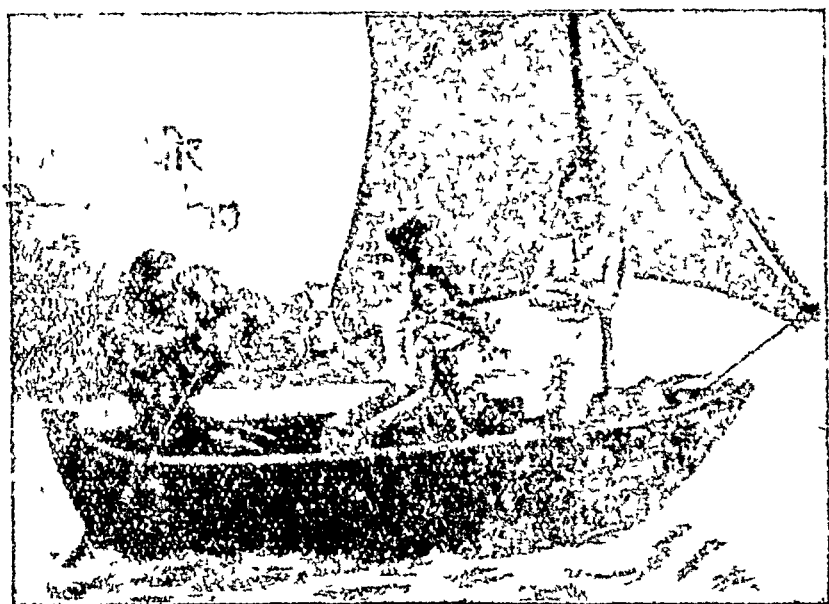
रामचन्द्र जी का नदी पार करना

दशरथ राम के वियोग मे अत्यन्त दुखी होकर परलोकवासी हो गये। अन्तिम क्रिया-कर्म करने के लिए राजकुमार भरत ननसाल से बुलाये गये। भरत ने अपने पिता का मृतक-संस्कार तो किया, परन्तु वह राम के वन जाने से बहुत दुखित हुए। इसके लिए उन्होने अपनी माता कैकेयी को बहुत बुरा-भला कहा। अन्त मे
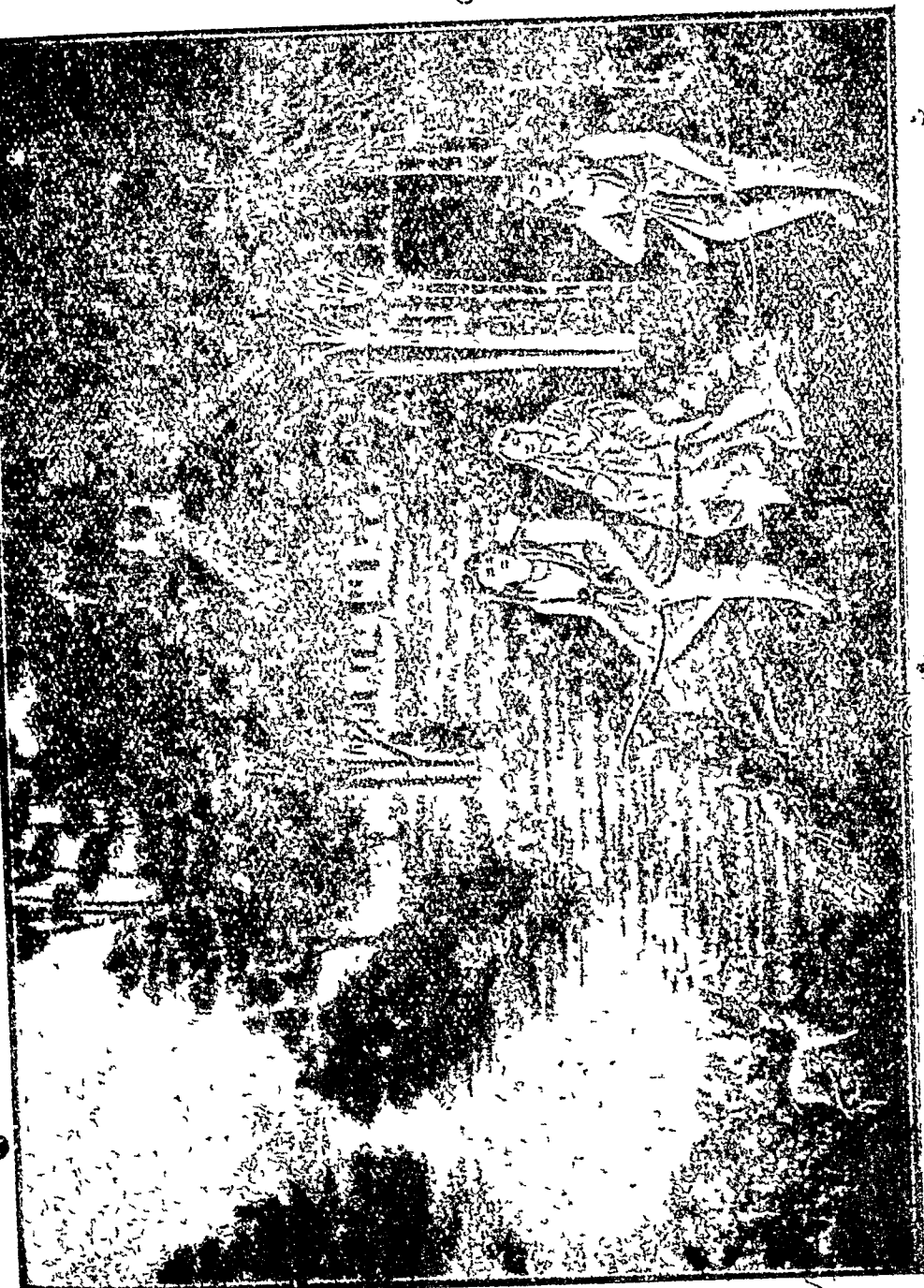
रामचन्द्रजी का वनवास

मृतक-संस्कार से निवृत्त हो कर वह राम को वापस लौटाने के लिए वन की ओर चल दिये, परन्तु राम किसी भी प्रकार लौटने के लिए तैयार न हुए। रामचन्द्र जी के बहुत समझाने-बुझाने पर भरत अयोध्या लौट आये। वहाँ पहुँच कर वह स्वयं सिंहासन पर नहीं बैठे। उन्होंने राम की खड़ाऊँओं को सिंहासन पर रख दिया, और बड़ी योग्यता से राज-काज चलाने लगे।

उधर राम चित्रकूट को छोड़ कर पञ्चवटी पहुँचे, और वहाँ कुटी बना कर रहने लगे। यहाँ एक दिन शूर्पणखा नाम की राक्षसी रामचन्द्रजी से कहने लगी कि, "आप मेरे साथ विवाह कर लीजिए।" रामचन्द्रजी ने उसे लक्ष्मण के पास भेज दिया। लक्ष्मणजी ने उसके नाक-कान काट लिये। वह रोती-पीटती अपने भाई खर-दूषण के पास पहुँची। खर-दूषण ने राम-लक्ष्मण से युद्ध किया, परन्तु राम-लक्ष्मण ने उसका विध्वंस कर दिया। अब शूर्पणखा लङ्का के राजा रावण के पास पहुँची, और उसे सारा हाल कह सुनाया। रावण की आज्ञा से उस का मामा मारीच नामक राक्षस कपट-रूप सोने का मृग बन कर पञ्चवटी पहुँचा, और स्वयं रावण भी भेस बदल कर आ गया। जिस समय राम और लक्ष्मण इस कपट रूप मृग का शिकार करने के लिए गये, तो रावण पीछे से सीता को अकेली पा चुरा कर लंका ले आया। वहाँ पहुँच कर उस दुष्ट ने सीता को अपनी रानी होने के लिए आग्रह किया। सीता एक सती और पतिव्रता स्त्री थी। उस पर रावण की बातों का तनिक भी प्रभाव न पड़ा, और वह भले प्रकार से अपने सतीत्व पर दृढ़ बनी रही।

जब राम और लक्ष्मण उस मृग का पीछा कर के लौटे और उन्होंने वहाँ सीता को न पाया, तो वे बहुत दुखी हुए। दोनो

भाइयों ने सारा जंगल ढूँढ़ मारा, परन्तु सीता का पता न लगा। अन्त में जटायु नाम के गिद्ध से, जिसे रावण ने घायल कर दिया था, पता लगा कि सीता को लंका का राजा रावण चुरा ले गया है। अतएव दोनों भाई लंका की ओर चल पड़े। किष्किधा पर्वत पर पहुँच कर उन्होने सुग्रीव से मित्रता की, जो अपने भाई बालि का सताया हुआ वहाँ रहता था। रामचन्द्रजी ने बालि को मार कर सुग्रीव को वहाँ का राजा बनाया। सुग्रीव ने बानरों की बहुत सी सेना रामचन्द्रजी को दी, जिसके प्रधान सेनापति हनुमान व जामवन्त थे। इस सेना को ले कर रामचन्द्र जी लङ्का पर चढ़ाई करने के लिए चल दिये।

रावण को उस की स्त्री मन्दोदरी ने बहुत समझाया कि वह सीता को वापस कर दे, परन्तु उसने एक न मानी। रावण का एक भाई, जिसका नाम विभीषण था, उसके अत्याचारों से दुखी हो कर रामचन्द्रजी से आ मिला। रामचन्द्रजी ने अपनी सेना की सहायता से समुद्र पर पुल बाँध लिया, और लंका जा पहुँचे। उन्होंने रावण को युद्ध की घोषणा दे दी। रावण भी युद्ध के लिए तैयार था। फिर क्या था ? राम-रावण का घमासान युद्ध होने लगा। प्रति दिन युद्ध मे रावण की बहुत सी सेना तथा अनेक वीर मारे जाने लगे। एक दिन रावण के पुत्र मेघनाद के बाण से लक्ष्मण को ऐसी मूर्छा आई कि वह मरणासन्न हो गये। परन्तु पहाड़ पर से हनुमान जी के संजीवनी बूटी ले आने से उनके प्राण बच गये। अन्त में रावण और उसकी सारी सेना लड़ाई मे मारी गई। इसी विजय के उपलक्ष में आज दिन तक विजय-दशमी या दशहरे का त्यौहार मनाया ज़ाता है। रामचन्द्रजी ने लङ्का का राज्य विभीषण के सुपुर्द किया, और वह सीता को ले कर वापस लौट आये।

अब १४ वर्ष वनवास के समाप्त हो आये थे। इसलिए राम सीता आदि सहित सीधे अयोध्या आये। अयोध्या के नर-नारी १४ वर्ष पीछे राम-सीता को फिर देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुए। रामचन्द्रजी के राज्याभिषेक की खूब धूम-धाम से तैयारियाँ होने लगी। बड़े ठाठ-बाट से राम सिंहासन पर बैठे, और तीनो भाइयो की सम्मति से राज्य करने लगे। इन के राज्य मे सारी प्रजा प्रसन्न तथा सन्तुष्ट थी। परन्तु एक दिन एक धोबी अपनी स्त्री से, जो कई दिन किसी दूसरे मनुष्य के यहाँ रह कर आई थी, रुष्ट हो कर कह रहा था कि "मै राम नही हूँ, जो तुझे सीता की तरह अपने घर रख लूँ।" यह सुन कर लोकापवाद के भय से रामचन्द्रजी ने सीताजी को वनवास दे दिया। वनवास के काल मे गर्भवती सीताजी वाल्मीकि ऋषि के आश्रम मे रहीं, और वहीं पर कुछ ही दिन पीछे इनके लव और कुश दो पुत्र उत्पन्न हुए। दोनो पुत्रो को वाल्मीकि ने भली भाँति शिक्षा दी। अन्त मे एक दिन वाल्मीकि ने रामचन्द्रजी से आग्रह किया कि वह सीता जी को वापस ले ले। सीता ने अपने सतीत्व का प्रमाण देने के लिए धरती से प्रार्थना की कि वह फट जाय। ऐसा ही हुआ, और वह उस मे समा गईं।

रामचन्द्रजी के राज्य मे प्रजा बहुत प्रसन्न थी। प्रत्येक मनुष्य सुखी था, क्योंकि वह न्यायपूर्वक राज्य करते थे और उनका प्रजा पर बहुत प्रेम था। राज्य मे कोई भी मनुष्य निर्धन व दरिद्री न था। लोग बुरे काम नही करते थे। इन्ही कारणो से अच्छे राज्य को आजकाल भी 'राम-राज्य' कहते हैं।

बहुत प्राचीन काल मे रामायण का ग्रन्थ संस्कृत भाषा मे वाल्मीकिजी ने लिखा था। अकबर के समय मे अर्थात् आज

से कोई ३०० वर्ष पहले गोस्वामी तुलसीदासजी ने हिन्दी भाषा में रामायण लिखी। इस ग्रन्थ को हिन्दू बड़े आदर की दृष्टि से देखते हैं। कोई हिन्दू घर ऐसा नहीं है, जिसमें यह ग्रन्थ न पाया जाता हो। रामायण से हम को अनेक शिक्षाएँ मिलती हैं। राम का सौजन्य, भरत की साधुता, लक्ष्मण का भ्रातृ-प्रेम और सीता के सतीत्व के उदाहरण हमको किसी भी देश के साहित्य में ढूँढ़े नहीं मिलते।

प्रश्न

१ राजा दशरथ की राजधानी कौन सी थी ?
२ उनकी तीनों रानियों और चारों पुत्रों के नाम बताओ।
३ ऋषि विश्वामित्र राम और लक्ष्मण को क्यों लिवा ले गये ?
४ सीताजी के स्वयंवर में महाराजा जनक की क्या प्रतिज्ञा थी ?
५ राम के राज्याभिषेक में किसने विघ्न डाला था, और क्यों ?
६ रानी कैकेयी के दो वरदान कौन कौन से थे ?
७ सिद्ध करो कि भरत को राज्य करने की इच्छा न थी।
८ रावण सीता को कैसे हर ले गया ?
९ विजय-दशमी आजकल क्यों मनाई जाती है ?
१० वन से लौटने के पीछे रामचन्द्रजी ने सीता को वनवास क्यों दिया ?
११ राम-राज्य से तुम क्या समझते हो ?
१२ रामचन्द्रजी की कथा से क्या शिक्षाएँ मिलती है ?

अब राज्य का उत्तराधिकारी कोई न रहा। रानी सत्यवती ने भीष्म से कहा कि "अब तुम्हारे वंश का अन्त हुआ चाहता है; अतएव तुम अपनी प्रतिज्ञा तोड़ कर विवाह करो और राज-सिंहासन पर बैठो।" परन्तु भीष्म इसके लिए राज़ी न हुए। प्रसिद्ध है कि महात्मा वेदव्यास के योगबल से दोनो राजकुमारो की विधवा रानियो और उनकी एक दासी के गर्भ रहा। रानियो के धृतराष्ट्र और पाण्डु नामक दो पुत्र पैदा हुए, और दासी के विदुर नामक पुत्र का जन्म हुआ। धृतराष्ट्र जन्म से अन्धे थे, और पाण्डु जन्म से ही रोगी थे। जब दोनो राजकुमार युवा हुए तो राजगद्दी धृतराष्ट्र के अन्धे होने के कारण छोटे भाई पाण्डु को दी गई। पाण्डु के दो रानियाँ थीं, कुन्ती और माद्री। इन से युधिष्ठिर भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव पाँच पुत्र उत्पन्न हुए, जो 'पाण्डव' कहलाये। धृतराष्ट्र के एक रानी गान्धारी थी, जिस से सौ पुत्र उत्पन्न हुए और जो 'कौरव' कहलाये। इनमे दुर्योधन सब से बड़ा था ।

बचपन मे जब कभी कौरव-पाण्डव मिल कर खेलते थे, तो भीम कौरवो को बहुत सताता था, जिससे कौरव लोग पाण्डवों से बहुत द्वेष रखने लगे थे। द्वेष रखने का एक दूसरा कारण यह भी था कि कौरव-पाण्डवो मे सब से बड़े युधिष्ठिर ही थे, और वही उस समय की राजनीति तथा प्रथा के अनुसार पाण्डु के पीछे गद्दी के अधिकारी थे। परन्तु दुर्योधन चाहता था कि गद्दी मुझे मिले। अतएव जब ऐसा समय आया कि महाराज पाण्डु स्वर्गवासी हुए, तो ज्येष्ठ पाण्डव युधिष्ठिर की आयु कम होने के कारण अन्धे महाराज ही राज काज चलाने लगे। दुर्यो-धन ने अपने मित्र कर्ण की सम्मति से जो कुन्ती का पुत्र था

और जिसे महाराज धृतराष्ट्र के सारथी ने पाला पोषा था तथा अन्य कुछ लोगो के परामर्श से यह निश्चय किया कि, 'यदि पाण्डवो को किसी तरह मरवा दिया जाय, तो सारा झगड़ा ही मिट जाय, और फिर हम निर्द्वन्द हो कर सर्वदा के लिए राज किया करें।' इसलिए उसने कई षड्यन्त्र रचे। एक बार ऐसा किया कि एक महल लाख व गन्धक का तैयार किया और उस में पाण्डव ठहराये गये। निश्चित समय पर महल में आग लगा दी गई, परन्तु सौभाग्य से पाण्डवों को इस भयङ्कर षड्यंत्र की सूचना पहले ही मिल गई थी। वे एक सुरंग द्वारा चुपके से निकल भागे। उधर एक स्त्री अपने पाँच पुत्र सहित उस महल में आ टिकी। वह और उसके पुत्र जल कर भस्म हो गये। कौरव यह समझे कि पाण्डव ही जल गये हैं।

लाख-भवन से प्राण बचा कर पाण्डव लोग जंगल-जंगल में मारे-मारे फिरने लगे। कुछ समय पीछे वे नाना प्रकार के संकटो को झेलते हुए द्रुपद नगर में जा पहुँचे। यहाँ उन्होंने सुना कि द्रुपदराज की कन्या द्रौपदी का स्वयंवर होने वाला है। स्वयंवर के दिन पाँचो भाई अपने ब्राह्मण वेष मे स्वयंवर-सभा मे तमाशा देखने के लिए जा पहुँचे। द्रुपदराज की प्रतिज्ञा थी कि 'जो ऊपर बाँस से लटकी हुई मछली की आँख को नीचे तेल मे उसकी परछाईं देख कर बेध देगा, उसी के साथ द्रौपदी का विवाह कर दिया जायगा।" जब कोई मनुष्य उस मछली को न बेध सका, तो अर्जुन ने तमाशा देखने वालों की भीड़ में से निकाल धनुष पर बाण चढ़ाया और मछली को बेध डाला। द्रौपदी ने अर्जुन को वरमाला पहना दी। पाँचों भाई प्रसन्न होते हुए अपनी माता कुन्ती के पास आये, और द्रौपदी

भी उनके पीछे चली आई। माता के पास आ कर युधिष्ठिर ने कहा, 'माता जी ! आज हम एक बड़ी अच्छी चीज लाये है ।" कुन्ती ने बिना देखे ही कोई खाने की चीज़ समझ कर कह दिया कि, "पाँचो भाई मिल कर बाँट लो ।" इसलिए द्रौपदी का विवाह पाँचो पाण्डवो के साथ हो गया।

जब दुर्योधन को यह मालूम हुआ कि द्रौपदी-स्वयंवर मे लक्ष्य वेध करने वाला अर्जुन था, तो उसे बहुत ही अचम्भा हुआ। अब क्योकि पाण्डव द्रुपदराज के सम्बन्धी हो गये थे, इसलिए दुर्योधन को उन्हे आधा राज्य बाँट देने पर विवश होना पड़ा। महाराज युधिष्ठिर ने इन्द्रप्रस्थ नाम की नगरी बसा कर उसे अपनी राजधानी बनाया। वही इन्द्रप्रस्थ आजकल भारतवर्ष की राजधानी है, और दिल्ली के नाम से प्रसिद्ध है। महाराज युधिष्ठिर ने गद्दी पर बैठने के कुछ ही दिन पीछे एक वृहत् राजसूय यज्ञ किया, जिससे पाण्डवो की ख्याति चारो ओर फैल गई। परन्तु दुर्योधन उनकी इस कीर्ति को न सह सका। उसने महाराज धृतराष्ट्र से आज्ञा ले कर महाराज युधिष्ठिर को आदरपूर्वक जुआ खेलने के लिए बुलाया, और छल-कपट से उन की सारी सम्पत्ति तथा राज्य हर लिया। महाराज युधिष्ठिर सारे राज-पाट को हार जाने के अतिरिक्त द्रौपदी को भी दॉव पर रख कर हार गये। दुःशासन ने भरी सभा मे द्रौपदी का अपमान करने के उद्देश्य से उसका चीर खींचा। उस अबला ने उस समय भगवान् कृष्ण को याद किया, और उनकी कृपा से उसका चीर इतना बढ़ा कि दुःशासन के हाथ उसे खींचते-खींचते थक गये, परंतु चीर का अन्त न हुआ। अस्तु। अन्त मे इन सारे कुकृत्यो के पश्चात् ऐसा तय हुआ कि पाण्डव बारह वर्ष वनवास और एक

वर्ष अज्ञातवास में जीवन व्यतीत करें, और तत्पश्चात् उन्हें उनका जुए मे हारा हुआ राज्य वापस दे दिया जाय।

देखो ! बुरे व्यसन कैसे अनिष्टकारी होते हैं। इनके चंगुल मे

श्रीकृष्ण

फँस कर मनुष्य अपना सर्वस्व खो बैठता है। यह कहना चाहिए कि महाभारत के समय मे भारत का अधःपतन आरम्भ हो चुका था, क्योकि बड़े-बड़े धर्मात्मा राजा भी दुष्कर्मों के दास थे।

पाण्डवो ने द्रौपदी सहित अनेक संकटो को झेल कर बारह वर्ष वन मे व्यतीत कर दिये, और अज्ञातवास का भी एक वर्ष अपने नाम और वेष बदल कर राजा विराट के यहाँ नौकरी कर के बिता दिया। इस प्रकार जब तेरह वर्ष बिता कर पाण्डव हस्तिनापुर लौटे और उन्होने अपना राज्य कौरवो से वापस माँगा, तो उन्होने इस के लिए साफ़ इन्कार कर दिया। महाभारत के युद्ध का प्रधान कारण यही था। दुर्योधन को बहुत समझाया गया कि वह पाण्डवो को उनका आधा राज्य दे दे, परन्तु उसने एक न मानी। पाण्डव तो इस बात के लिए भी राज़ी थे कि "हमे केवल पाँच ही टूटे-फूटे गाँव दे दिये जाँय, तो हम इसी मे सन्तोष कर लेगे।" परतु दुर्योधन ने स्पष्ट रूप से कह दिया कि "युद्ध किये बिना मै सुई की नोक के बराबर भी धरती नहीं दूंगा।" ऐसी स्थिति देख कर पाण्डवो को युद्ध के लिए विवश होना पड़ा। दोनो ओर से खूब ही युद्ध की तैयारियाँ होने लगी। गुरु द्रोणाचार्य, भीष्म पितामह, कर्ण और जयद्रथ आदि सभी बड़े-बड़े शूरवीर कौरवो की ओर से, और द्रुपदराज, विराटराज तथा श्रीकृष्ण आदि पाण्डवो की तरफ से युद्ध मे सम्मिलित हुए। भगवान् कृष्ण युद्ध मे लड़े नही, वरन् अर्जुन के सारथी बने। जब युद्ध आरम्भ हुआ, तो अर्जुन ने अपने विपक्ष मे अपने दादा, भाई, गुरु आदि को सामने खड़ा देख कर धनुषबाण डाल दिये। उनके चित्त ने नहीं चाहा कि गुरु, दादा आदि को मारने के लिए बाण छोड़े जायँ। ऐसा देख कर भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को समझाया, और उसे युद्ध करने के लिए तैयार किया। भगवान् कृष्ण द्वारा अर्जुन को दिया हुआ यही उपदेश 'गीता' नामक छोटी सी पुस्तक मे लिखा हुआ है। इस पुस्तक का आदर सारे संसार मे है।
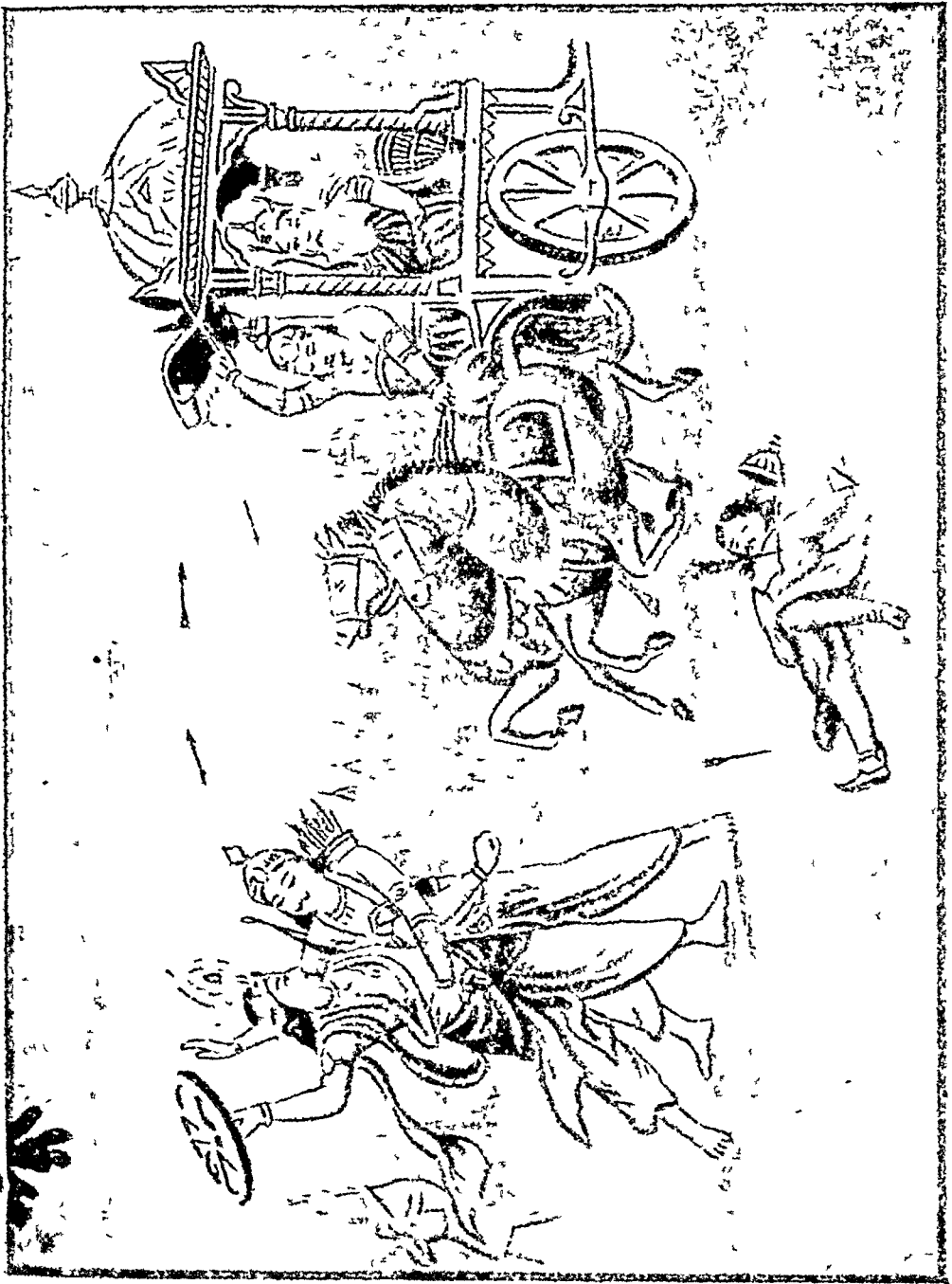
श्रीकृष्ण युद्ध करने को उद्यत हैं, अर्जुन उन्हें रोक रहे हैं

दोनो पक्षों मे खूब घमासान युद्ध होने लगा और अठारह दिन तक ऐसा महासंग्राम हुआ कि उसमे सहस्रो वीर योद्धा और सिपाही काम आये। गुरु द्रोणाचार्य ने एक दिन युद्ध के दिनो मे ही चक्रव्यूह की रचना की, जिसका तोड़ना अर्जुन के अतिरिक्त कोई नही जानता था। परंतु उस दिन अर्जुन किसी दूसरे युद्ध मे लगे हुए थे। इस कारण अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु जो अभी केवल १६ वर्ष ही का था, बहुत हठ कर के उसे तोड़ने चल पड़ा। इस वीर बालक ने चक्रव्यूह तोड डाला, और बड़ी वीरता से युद्ध किया। परंतु कौरवो के सात महारथियो ने इसे अन्यायपूर्वक घेर कर मार डाला। इस पर अर्जुन ने जयद्रथ को, जो कौरव-सेना का एक महारथी था, दूसरे दिन सूर्यास्त तक मार डालने की प्रतिज्ञा की। भगवान् कृष्ण के उद्योग से उन्होने जयद्रथ को मार कर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की।

कौरव-पाण्डव और उनकी सेनाएँ दिन मे युद्ध करती थीं, परन्तु रात के समय सब एक दूसरे से शत्रु-भाव छोड़ कर मिलते थे और साथ-साथ बैठ कर भोजन करते थे। महाराज युधिष्ठिर जब कभी युद्ध के अतिरिक्त दूसरे समय मे गुरु द्रोणा-चार्य तथा दादा भीष्म से मिलते, तो वे उन्हे अपना विपक्षी होने पर भी विजय प्राप्त करने का आशीर्वाद देते थे। देखो ये कैसी विचित्र बाते थीं।

अन्त मे सारे ही कौरव, गुरु द्रोणाचार्य, भीष्म आदि शूर-वीर और सारा कौरवो का सैन्य-दल इस संग्राम मे काम आया। पाण्डवो के श्रेष्ठ योद्धाओ मे केवल अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु ही मारा गया। पाण्डवो की जीत हुई, और ज्येष्ठ पाण्डव युधिष्ठिर सिहासनारूढ़ हो कर अपने चारो भाइयो की सम्मति से राज-काज चलाने लगे।
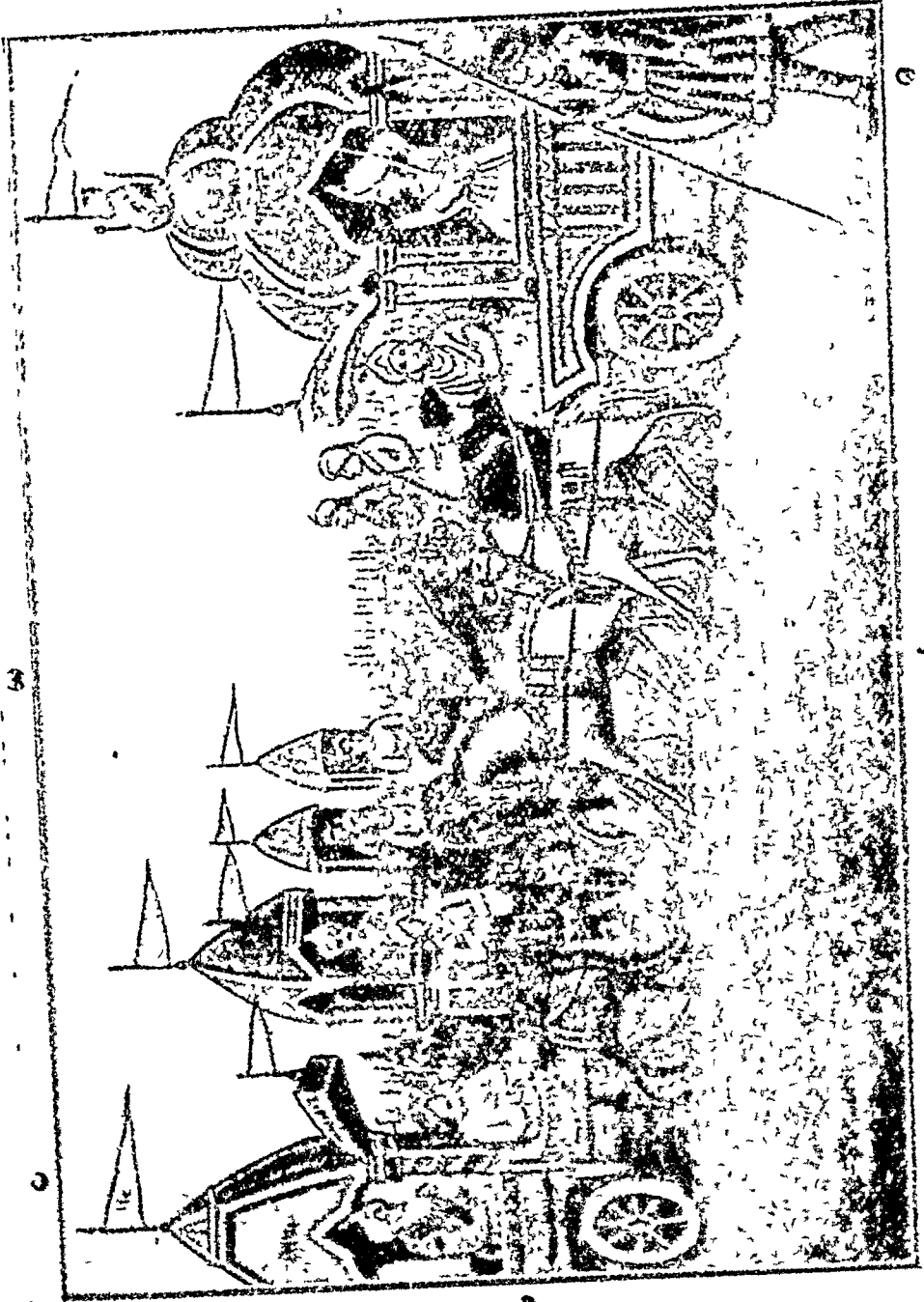
महाभारत की लड़ाई

कहा जाता है कि महाराज युधिष्टिर ने २६ वर्ष राज्य किया। इनके शासन-काल मे प्रजा अति प्रसन्न रही। गद्दी पर बैठने के कुछ समय पीछे इन्होने एक अश्वमेध यज्ञ किया, जिस मे प्रायः सभी छोटे-बड़े राजाओ ने इन को प्रधान मान लिया। अन्त मे पाचो भाई द्रौपदी सहित हिमालय पहाड़ पर गलने के लिए चले गये। एक-एक करके युधिष्टिर के अतिरिक्त सभी बर्फ मे गल कर मर गये। प्रसिद्ध है कि स्वर्ग-लोक से एक विमान वहीं पर आया, और युधिष्ठिर उसी पर बैठ कर मनुष्य-देह से ही वैकुण्ठ को चले गये। महाराज युधिष्ठिर के पीछे अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु की स्त्री उत्तरा के गर्भ से उत्पन्न हुआ बालक परीक्षित उत्तराधिकारी हुआ, जो एक बड़ा प्रसिद्ध राजा हो गया है।

प्रश्न

१ महाराज कुरु कौन थे ?
२ महाराज शान्तनु ने देवव्रत को गंगा मे क्यों नही बहने दिया ?
३ देवव्रत का नाम भीष्म कैसे पड़ा ?
४ भीष्म की दो प्रतिज्ञाएँ कौन-कौन सी थी ?
५ बड़े भाई धृतराष्ट्र के होते हुए छोटे भाई पाडु को गद्दी क्यो दी गई ?
६ पांचो पाडवो के नाम बताओ ।
७ पांडवो को वनवास क्यो दिया गया ?
८ लाख और गन्धक के महल मे से पाडव कैसे बचे ?
९ द्रौपदी के स्वयवर की क्या शर्त थी ?
१० श्रीकृष्ण कौन थे ? गीता के विषय मे तुम क्या जानते हो ?
११ दुर्योधन ने पाडवो का राज-पाट कैसे छीना ?
१२ उदाहरण देकर जूआ खेलने की हानियाँ समझाओ ।
१३ महाभारत के युद्ध का क्या कारण था ? उसका फल क्या हुआ ?
१४ युधिष्ठिर ने कितने वर्ष राज्य किया ?

अध्याय ४

चन्द्रगुप्त मौर्य

(भारत का प्रथम सम्राट्)

प्राचीन समय में उत्तरी भारत कई प्रान्तो मे बँटा हुआ था। उन्हीं मे से एक का नाम मगध था। मगध को आजकल बिहार कहते हैं। यहाँ नन्द-वंश के राजा राज्य करते थे आज से कोई २,३०० वर्ष हुए जब मगध मे नन्द-वंश के स्थान पर मौर्य-वंश का राज्य हो गया था। मौर्य-वंश की नींव डालने वाला चन्द्रगुप्त मौर्य था।

वह एक क्षत्रिय वंश का राजकुमार था। कहा जाता है कि मौर्य-वंश के क्षत्री हिमालय पर्वत के समीप एक प्रान्त मे रहा करते थे। इस देश मे मोर बहुत थे, इसलिए इसे मौर्य राज्य कहते थे। परन्तु कुछ विद्वान् कहते है कि चन्द्रगुप्त का वंश मौर्य इसलिए कहलाया कि उसकी माता का नाम 'मुरा' था।

कहा जाता है कि चन्द्रगुप्त ने चाणक्य या कौटल्य नामक ब्राह्मण की सहायता से मगध का राज्य प्राप्त किया था। यह ब्राह्मण कुरूप था और नन्द राजा के राज्य मे रहता था। एक बार राजा ने इस को किसी बात पर रुष्ट कर दिया। इस पर उस ने यह प्रण किया कि, "मै नन्द-वंश का नाश कर डालूँगा"। जिस समय चन्द्रगुप्त ने मगध को अपने अधीन किया, उस समय उसकी अवस्था २५ वर्ष की थी। उसने कुल २४ वर्ष राज्य किया। मगध पर अधिकार कर लेने के पश्चात् चन्द्रगुप्त ने

कुछ ही काल मे अन्य प्रान्तो पर भी अधिकार कर लिया, और शीघ्र ही उस का राज्य वहुत वड़ा हो गया।

सिकन्दर महान् के मरने के वाद उसके साम्राज्य का पूर्वी भाग उस के एक सेनापति मलयकेतु (सिल्यूकस निकाटर) के हाथ मे आया। मलयकेतु भी सिकन्दर के समान यूनानी था। उस की इच्छा हुई कि भारत का राज्य वह फिर अपने हाथ मे ले ले। इस उद्देश्य से उसने सिन्धु नदी पार कर के भारत पर धावा मारा। परन्तु चन्द्रगुप्त ने उसे वुरी तरह से परास्त किया, और वह संधि करने पर विवश हो गया। उसने चन्द्रगुप्त को कावुल, कन्धार, हेरात और वलूचिस्तान देश दे दिये, और अपनी लड़की चन्द्रगुप्त को व्याह दी। उपहार के रूप मे चन्द्रगुप्त ने उसे ५०० हाथी दिये, और उसे अपने दरवार मे एक राजदूत रखने की आज्ञा दे दी। इस दूत का नाम मेगस्थनीज था।

चन्द्रगुप्त का राज्य अव सारे भारत पर था, और उन सीमान्त प्रदेशो पर भी था जो उसे मलयकेतु से मिले थे। इतना विशाल राज्य भारत के इतिहास में आज तक किसी का नही हुआ। मुगल वादशाह और अँग्रेजो के राज्य बड़े विस्तीर्ण रहे, परन्तु इतने नही कि जितना चन्द्रगुप्त का था।

राज्य के विस्तार के साथ चन्द्रगुप्त का शासन भी वहुत उत्तम था। मेगस्थनीज ने इसका वहुत अच्छा वर्णन लिखा है। वह लिखता है कि राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र (जिसे आज-कल 'पटना' कहते है) थी। यह विशाल नगर ६ मील लम्बा और १॥ मील चौड़ा था। नगर के चारो ओर एक सुदृढ़ कोट खिचा हुआ था। उस मे ६४ फाटक और ५७० मीनारे थी।

बाहर की ओर एक गहरी खाई खुदी हुई थी, जिस में सोन नदी का पानी पहुँचता था। इस प्रकार नगर की स्थिति बहुत अच्छी थी।

राजधानी पाटलिपुत्र के शासन के लिए ३० मनुष्यों की एक परिषद् थी। यह इसी प्रकार थी, जिस प्रकार आजकल म्यूनिसिपिल बोर्ड (चुँगियाँ) होते हैं। यह सभा पाँच-पाँच मनुष्यो की ६ पंचायतों मे बँटी हुई थी। प्रत्येक पंचायत के पास एक महकमा था। सम्भवतः देश के अन्य नगरों का भी प्रबन्ध इसी प्रकार होता था।

सम्राट् का महल बड़ा विशाल था, और लकड़ी का बना हुआ था। परन्तु सुन्दरता और वैभव में संसार भर में अपनी बराबरी नही रखता था। उसमे बेल-बूटे और सोने-चाँदी का काम बहुत था।

चन्द्रगुप्त का दरबार बड़ा शानदार था। उसमें एशिया के सभी स्थानो की आराम की वस्तुएँ मौजूद थीं। राजा सोने की पालकी में या सुनहरी झूल वाले हाथियो पर बैठ कर बाहर निकलता था। उस की रक्षा के लिए सशस्त्र स्त्रियाँ रहती थी। सम्राट् के मनोरंजन की असली वस्तु शिकार थी। परन्तु राजा बहुधा पशुओं की लड़ाई और तलवार चलाने वालों के खेल देखा करता था। कभी-कभी रथों मे बैल और घोड़े साथ जोड़ कर उनकी दौड़ कराता था।

राज्य कई प्रान्तो या सूबो में बँटा हुआ था। हर एक सूबे के लिए एक शासक नियत था। इस को 'स्थानिक' कहते थे। प्रत्येक स्थानिक के अधीन बहुत से 'गोप' होते थे, जो कई गाँवों या कई छोटे कस्बों का प्रबन्ध करते थे। एक गोप के नीचे कई

'ग्रामिक' होते थे, जो गाँव की देख-भाल करते थे। ग्रामिक सेवा के ही रूप मे काम करता था, और उसे वेतन नही मिलता था। इस से पता चलता है कि उस समय जनता मे कितना स्वार्थ-त्याग था।

चन्द्रगुप्त की सेना बहुत बड़ी थी। उसके पास ६ लाख पैदल, ३० हज़ार घुड़सवार, ३६ हज़ार हाथी, और १० हज़ार रथ थे। सैनिको को सदा नियत समय पर वेतन मिलता था। इस विशाल सेना के प्रबन्ध के लिए ३० मनुष्यो की एक अलग ही परिषद् नियत थी। सैनिको को विशेष रूप से आज्ञा दी गई थी कि वे चढ़ाई करते समय किसानो के कार्य मे बाधा न डाले। सम्राट् के पास एक बड़ा जहाज़ी बेड़ा भी था।

सम्राट् को नहरे खुदवाने का बहुत शौक़ था। उसने बहुत सी सिचाई की नहरे बनवाईं। इन नहरो से खेती को बहुत लाभ पहुँचा और उपज बहुत बढ़ गई। अकाल भी बहुत कम पड़ने लगे। सम्राट् ने सड़के भी बहुत सी बनवाईं। इन मे से एक ५,००० मील लम्बी थी।

फौजदारी का क़ानून बड़ा कठोर था। चोरी करने वालो के नाक-कान काट लिये जाते थे। कई अपराधो के लिए फाँसी दी जाती थी। कहने की आवश्यकता नही कि इस कठोरता के कारण देश मे शान्ति बहुत रहती थी।

मेगस्थनीज़ लिखता है कि लोग शान्ति-प्रिय, ईमानदार, मितव्ययी, परिश्रमी, सच्चे और क़ानून के अनुसार चलने वाले थे। मनुष्य अपने मकानो पर ताले नही लगाते थे, क्योकि चोरी का भय नही था। लोग अपने वचन के पक्के थे। वे नशा नही करते थे। पुरुष वीर और स्त्रियाँ शुद्ध आचरण वाली होती थी।

सब का व्यवहार बड़ा पवित्र था। दासत्व (गुलामी) की प्रथा देश में नही थी। लोग कचहरी का मुख भी नहीं देखते थे। देश मे विद्या का प्रचार खूब था।

ऊपर लिखी हुई सब बातों से पता लगता है कि चन्द्रगुप्त बड़ा योग्य, शूरवीर और प्रतापी शासक था। इसके राज्य मे प्रजा बड़े सुख-चैन से रहती थी, और लोगों का जीवन सीधा-सादा था। चन्द्रगुप्त पहले बौद्ध था, परन्तु पीछे जैन-धर्म का अनुयायी हो गया था। ऐसा वीर, तेजस्वी और प्रतिभाशाली सम्राट् भारत मे आज तक नहीं हुआ है। चन्द्रगुप्त का नाम इतिहास में सदा अमर रहेगा।

प्रश्न

१ चन्द्रगुप्त का वंश 'मौर्य' क्यो कहलाया ?
२ चाणक्य कौन था ? उसने नन्द-वंश का क्यों नाश किया ?
३ मलयकेतु कौन था ? चन्द्रगुप्त ने उसे हरा कर उससे किन शर्तों पर सन्धि की थी ?
४ मेगस्थनीज़ कौन था ? वह भारत में क्यों आया ? उसने भारतवासियों के विषय में क्या लिखा है ?
५ पाटलिपुत्र नगर का प्रबन्ध कैसे होता था ?
६ सम्राट् के मनोरंजन के सामान क्या थे ?
७ सिद्ध करो कि उस समय जनता में बहुत स्वार्थ त्याग था ?
८ चन्द्रगुप्त की सेना कितनी थी ?
९ चन्द्रगुप्त के समय में गुलामी की प्रथा थी या नहीं ? इस प्रथा से क्या हानियाँ हैं ?
१० चन्द्रगुप्त का चरित्र वर्णन करो।

अध्याय ५

अशोक

(एक धर्मात्मा राजा)

बालको ! तुम पिछले पाठ मे सम्राट् चन्द्रगुप्त का वर्णन पढ़ चुके हो। अशोक उसी का नाती था, और यह भी उतना ही प्रतापी शासक हो चुका है। तुम ने ऐसे बहुत से राजाओं का वर्णन सुना होगा, जो लड़ाइयाँ लड़ते थे और अपने राज्य का विस्तार करते थे। परन्तु अशोक ऐसा राजा हो चुका है, जो युद्ध से घृणा करता था और दया तथा धर्म के अनुसार शासन करता था। इतने विशाल राज्य का ऐसा धार्मिक राजा संसार मे शायद ही कोई हुआ हो। इसी लिए इस को इतिहास में 'अशोक महान्' कहते हैं।

अपने पिता बिन्दुसार के शासन-काल मे अशोक उज्जैन और तक्षशिला नामक प्रान्तो का शासक रह चुका था। इन का शासन उसने बड़ी उत्तमता और योग्यता से किया। उसी समय मालूम हो गया था कि अशोक किसी दिन एक बड़ा धर्मात्मा और प्रतापी राजा बनेगा।

एक बार सम्राट् बिन्दुसार ने सब राजकुमारों को इसलिए बुलाया कि वह उनकी परीक्षा करे कि उस के पीछे राज्य के शासन के लिए सब से योग्य कौन है। उसने सब लड़को को बुला कर कहा कि, "राज सिंहासन के लिए कल तुम्हारी परीक्षा होगी। जो सब से अधिक योग्य सिद्ध होगा उस को मै अपना उत्तराधिकारी बनाऊँगा।" जब वे दूसरे

दिन दरबार में पहुँचे, तो और सब तो अपनी-अपनी सवारियो पर आये, परन्तु अशोक अपने पिता की बूढ़ी हथिनी पर बैठ कर आया। दरबार मे आकर और सब तो अपने-अपने स्थान पर बैठ गये, परन्तु अशोक चट से राजगद्दी पर ही जा बैठा। जब भोजन लाया गया, तो और सब ने बढ़िया-बढ़िया मिठाइयाँ खाईं, किन्तु अशोक ने अपनी माता के हाथ का ही बना भोजन पसन्द किया। सब दरबारियों ने एक मत हो कर कहा, "यद्यपि अशोक कुरूप है, परन्तु राजा होने के योग्य यही है।"

इसलिए पिता की मृत्यु के पीछे अशोक ही गद्दी पर बैठा। अशोक अपने दादा चन्द्रगुप्त की तरह बड़ा वीर था। और अपनी वीरता का परिचय लड़ाई के मैदान में देना चाहता था। इसलिए उस ने कलिंग देश से लड़ाई ठानी, जो आजकल उड़ीसा कहलाता है। इस युद्ध में एक लाख मनुष्य मारे गये और डेढ़ लाख बन्दी किये गये। इस भयानक हत्याकाण्ड को देख कर अशोक का हृदय पसीज गया। उसने शीघ्र ही निश्चय कर लिया कि आज से पीछे मै कोई युद्ध नहीं करूँगा। कलिंग का युद्ध अशोक का प्रथम तथा अन्तिम युद्ध था।

जिस समय अशोक राज्य करता था, उन दिनो भारत में महात्मा बुद्ध द्वारा चलाये हुए बौद्ध-धर्म का प्रचार बड़े ज़ोरो पर था। अशोक ने युद्ध के कुछ ही वर्ष पीछे बौद्ध-धर्म अंगीकार कर लिया, और धर्म के अनुसार शासन करने की ठान ली।

बौद्ध-धर्म के फैलाने के लिए अशोक ने बड़ा महान् उद्योग किया। उसने उस धर्म को अपने देश क्या विदेशो में भी फैलाने के लिए कोई भी बात उठा नहीं रक्खी। उसने बौद्धधर्म को, जिसका

प्रचार अब तक केवल भारत के ही कुछ भागो मे था, संसार का एक मुख्य धर्म बना दिया। धर्म के प्रचार के हेतु अशोक ने सारे में भारत और एशिया, योरुप तथा अफ्रीका तीन महाद्वीपो के भिन्न-भिन्न प्रान्तो मे अनेक बौद्ध उपदेशक भेजे। अफगानिस्तान और बलूचिस्तान के निवासियो ने भी इस धर्म को स्वीकार कर लिया। सम्राट् ने अपने पुत्र महेन्द्र और पुत्री सघमित्रा को धर्म-प्रचार करने के लिए लङ्का भेजा। दूर-दूर के राजाओ से अशोक की मित्रता हो गई।

अशोक स्तम्भ
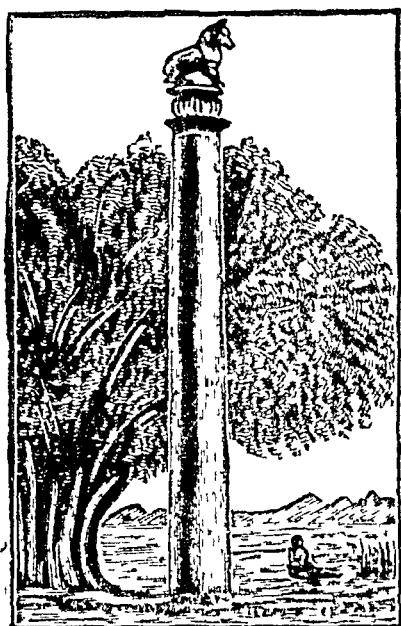
टीले, पत्थर की लाट और गुफाओं की भीतो पर अशोक ने प्रजा के लिए अपनी आज्ञाएँ खुदवा दी। ये लेख देश के भिन्न-भिन्न भागो मे रक्खे गये, और ये आज तक देखने मे आते है। एक ऐसी ही लाट प्रयाग मे है। लेख पाली भाषा मे लिखे हुए है, जो उस समय भारत मे बोली जाती थी। सभी लेख बड़े शिक्षाप्रद है। एक लेख मे लिखा है कि, "मेरे राज्य के भीतर जितने मनुष्य है वे सब मेरे पुत्र के समान है। जिस तरह मै अपने पुत्र का हित चाहता हूँ, उसी प्रकार प्रजा की भी भलाई की इच्छा रखता हूँ।" दूसरे लेख मे लिखा है कि 'लड़के को चाहिए कि वह अपने माता-पिता की आज्ञा माने

और उनका आदर करे। प्रत्येक मनुष्य का धर्म है कि वह सब जीवों पर दया करे और सच बोले। शिष्य को अपने गुरू की आज्ञा माननी चाहिए। प्रत्येक मनुष्य को अपने कुटुम्बियो और नातेदारो के साथ प्रेम व आदर का व्यवहार करना चाहिए।" एक और लेख में लिखा है कि, "अब मैंने यह प्रबन्ध कर दिया है कि हर समय, हर जगह, चाहे मैं भोजन कर रहा हूँ या अपने अन्तःपुर में होऊँ, चाहे मैं अपने शयनागार मे होऊँ या और कहीं, अपनी गाड़ी मे होऊँ या बाग़ में, सरकारी सूचना देने वालो को सदा ही प्रजा के काम की सूचना मुझे दे देनी चाहिए, जिसको करने के लिए मैं सदा ही तैयार हूँ।" इन सब लेखों से पता लगता है कि अशोक अत्यन्त ही दयालु धर्मात्मा और प्रजा का शुभचिन्तक शासक था।

अशोक ने देश में चारों ओर बहुत से बौद्ध-मन्दिर भी बनवाये, जिन्हें 'विहार' कहते थे। इन विहारो मे बौद्ध-साधु जो 'भिक्षु' कहलाते हैं रहते थे। ये लोगो को उपदेश दे कर धर्म का प्रचार करते थे। सम्राट् ने बौद्धधर्म के सिद्धान्तों का निर्णय करने के लिए पाटलिपुत्र मे एक वृहत् सभा भी की।

अशोक ने बौद्धधर्म को ही अपना राज-धर्म बनाया था, और उसके प्रचार करने में, जैसा हम ऊपर कह आये हैं, उसने महान् उद्योग किया। भारतवर्ष का मुख्य धर्म भी उसके समय में यही हो गया था। परन्तु अन्य धर्मावलम्बियों के साथ भी कभी किसी प्रकार का कड़ा बर्ताव नहीं किया जाता था। अशोक की दृष्टि में सभी धर्म आदरणीय थे। अपने राज-कर्मचारियों को भी उसने विशेष आज्ञा दे रक्खी थी कि धर्म के कारण किसी मनुष्य के साथ कठोरता का बर्ताव न किया जाय।

अशोक का राज्य बहुत बड़ा था। दक्षिण के बहुत थोड़े से भाग को छोड़ कर वह सारे भारत पर राज्य करता था। इस के अतिरिक्त नैपाल और अफ़ग़ानिस्तान भी उस के राज्य मे शामिल थे।

अशोक को अपनी प्रजा के हित का सदा ध्यान रहता था। उसने गुप्तचर नियत किये थे कि वे उसे इस बात की सूचना देते रहे कि राज कर्मचारी किसी प्रकार से प्रजा को कष्ट तो नही पहुँचाते है। उस ने यात्रियो के लिए धर्मशालाएँ व सराये बनवाईं, सड़के बनवाईं, कुएँ खुदवाये और फलदार वृक्ष लगवाये। रोगियो की चिकित्सा के लिए अनेक अस्पताल बनवाये गये, जिनमे औषधि बिना मूल्य दी जाती थी। पशुओ के लिए भी अस्पताल बनवाये गये।

अशोक ने ४१ वर्ष राज्य करने के पश्चात् परलोकगमन किया। उसके राज्य मे प्रजा बड़ी सुखी थी और देश बड़ा धनी था। ऐसा धर्मात्मा राजा भारत क्या दूर-दूर देशो मे भी शायद ही कोई हुआ होगा। महाराज अशोक का नाम भारत के इतिहास मे स्वर्ण-अक्षरो मे लिखा जाने योग्य है।

प्रश्न

१ अशोक को इतिहास मे 'महान्' क्यो कहते है ?

२ अपने पिता के राज्य-काल मे वह कहाँ-कहाँ शासक रह चुका था ?

३ कलिङ्ग की लडाई के पीछे अशोक ने युद्ध न करने का निश्चय क्यो कर लिया था ?

४ अशोक ने कौन सा धर्म अङ्गीकार किया ?

५ बौद्ध-धर्म के प्रचार के लिए अशोक ने क्या-क्या काम किये ? उस के उद्योग से बौद्ध-धर्म विदेशों में कहाँ-कहाँ फैल गया ?

६ टीले, पत्थर, लाट और गुफाओं में उस ने लेख क्यों लिखवाये ?

७ अशोक के लेख किस भाषा में है ?

८ सिद्ध करो कि अशोक बड़ा दयालु, धर्मात्मा और प्रजा का शुभ-चिन्तक था।

९ 'विहार' किसे कहते हैं ?

१० अशोक ने अपनी प्रजा के सुख के लिए क्या-क्या काम किये ?
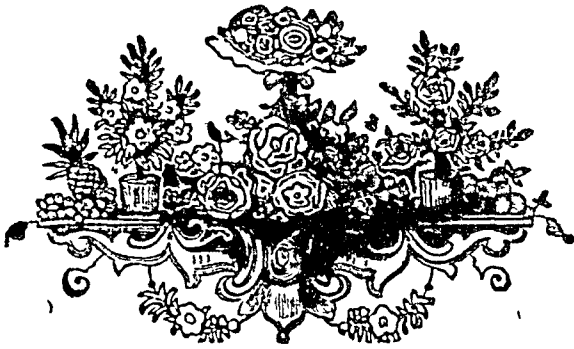
अध्याय ६

विक्रमादित्य

(एक पराक्रमी राजा)

बालको ! तुमने 'विक्रम सवत्' का नाम अवश्य सुना होगा। बतलाओ तो सही कि आजकल कौन सा विक्रम सवत् है ? क्या तुम कुछ अन्य संवतो के भी लाभ वतला सकते हो ? प्रत्येक के विषय मे यह भी जानने का प्रयत्न करो कि वह कैसे चला। विक्रम संवत् का नाम इस प्रकार पड़ा कि विक्रमादित्य के समय से कोई चार सौ वर्ष पहले से उज्जैन देश मे एक संवत् चला आ रहा था। विक्रमादित्य ने इस संवत् का प्रचार दूर दूर देशो मे किया, और उसी के नाम पर यह 'विक्रम संवत्' कहलाया।

विक्रमादित्य, जिसका वर्णन इस पाठ मे किया जाता है, गुप्त-वंश का तीसरा राजा था। इस का वास्तविक नाम 'चन्द्रगुप्त' था। इस ने विक्रमादित्य की पदवी धारण कर ली थी। यह सन् ३७५ ई० मे गद्दी पर बैठा, अर्थात् अशोक की मृत्यु के ६०० वर्ष पीछे। इसने ३९ वर्ष राज्य किया। उस का राज्य उत्तरी भारत के अधिकांश भाग पर था। विक्रमादित्य के विषय मे अनेक कथाएँ प्रचलित है। तुमने ऐसी कुछ कथाएँ अपने बड़े-बूढ़ो के मुँह से अवश्य सुनी होगी।

प्रारम्भ मे विक्रमादित्य को कई लड़ाइयाँ लड़नी पड़ी। इन से इसका राज्य और भी फैल गया। कहा जाता है कि इसकी राजधानी अयोध्या थी। परन्तु कुछ विद्वानो का मत है कि इसने उज्जैन को अपनी राजधानी बनाया।

विक्रमादित्य बड़ा वीर तो था ही, परन्तु साथ ही साथ साहित्य का बड़ा प्रेमी था और विद्वानो तथा साहित्य-सेवियो का बड़ा आदर करता था। उसके दरबार में उस समय नौ प्रसिद्ध विद्वान् आश्रय पाते थे। वे 'नवरत्न' कहलाते थे। इन में कालिदास सब से प्रसिद्ध था। यह संस्कृत का सर्वश्रेष्ठ कवि और नाटककार हुआ है। इसकी प्रशंसा के गुण भारतवर्ष मे ही नहीं विदेशो मे भी गाये जाते है। 'शकुन्तला नाटक' इस का सब से प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इस नाटक का अनुवाद संसार की प्रायः सभी मुख्य भाषाओ में हो चुका है, और संसार के सभी विद्वानो ने इसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। कालिदास का अधिक वर्णन तुमको अगले पाठ मे बतलाया जायगा। साहित्य के अतिरिक्त शिल्प और चित्रकारी को भी उन्नत करने मे विक्रमात्यि ने बहुत सहायता दी। उस ने अनेक सुन्दर मन्दिर और महल बनवाये, जो अब तक मौजूद है। उसकी राजधानी साहित्यसेवियों, कवियो, वैज्ञानिको ज्योतिपियो, चित्रकारो आदि की केन्द्र थी।

विक्रमादित्य के समय में एक प्रसिद्ध चीनी यात्री फाहियान भारतवर्ष मे आया। अशोक के उद्योग से चीन निवासी बौद्ध हो गये थे, परन्तु बौद्धधर्म की जन्मभूमि भारत थी। फाहियान यहाँ इसलिए आया कि वह बौद्धधर्म-सम्बन्धी कथाएँ, ग्रन्थ तथा अन्य आश्चर्यजनक वस्तुओ का हाल जान ले। वह यहाँ काबुल, गान्धार, तक्षशिला व पेशावर के मार्ग से आया था, और देश में १० वर्ष तक रहा। उसने अशोक के महल की बड़ी प्रशंसा की है, और ये विचार प्रकट किये हैं कि वह मनुष्य ने नहीं बल्कि देवों ने बनाया होगा। इस समय अशोक के महल के ही निकट दो बौद्धमठ थे, जिनमे ६००-७०० साधु रहते थे ये अपनी विद्वत्ता के लिए देश भर में प्रसिद्ध थे, और देश के प्रत्येक भाग के

लोग वहाँ ज्ञान प्राप्त करने के लिए जाया करते थे। उसको मार्ग में सैकड़ों मठ मिले, जिनमें हज़ारों भिक्षु रहते थे और अपने पवित्र जीवन व विद्या से लोगों को लाभ पहुँचाया करते थे। विक्रमादित्य स्वयं हिन्दू-धर्म का मानने वाला था; परन्तु उदारता उस में इतनी थी कि वह जैन. बौद्ध, तथा अन्य धर्मावलम्बियों के साथ सदा दया और समानता का वर्ताव करता था।

फ़ाहियान ने देश की धार्मिक दशा के अतिरिक्त और भी अनेक जानने योग्य बातें लिखी हैं। पाटलिपुत्र में अशोक के महल के अतिरिक्त अनेक बड़े सुन्दर महल बने हुए थे। लोगों को खाने-पीने की कमी न थी। जनता के लिए अनेक औषधालय खुले हुए थे, और अनेक ऐसी संस्थाएँ खुली हुई थीं, जिनमें किसी न किसी प्रकार की सहायता की जाती थी। एक औषधालय में तो केवल औषधि ही नहीं वरन् भोजन और कपड़े भी मुफ़्त मिलते थे। राजा का शासन कठोर नहीं था। फ़ौजदारी क़ानून भी मौर्यों के काल की तरह कड़ा न था। अधिकतर दण्ड जुर्मानों द्वारा ही दिये जाते थे। निरन्तर राजद्रोह करने के अपराध में दायाँ हाथ काट लिया जाता था। मृत्यु का दण्ड किसी भी अपराध के लिए न था। जनता तङ्ग न की जाती थी। लोग इधर-उधर स्वतन्त्रतापूर्वक फिरते थे। मालगुजारी मुख्यकर राजकीय भूमि से ही ली जाती थी। राजकीय कर्मचारियों को वेतन मिलता था। चारों ओर शान्ति थी। यात्री बेखटके यात्रा करते थे। लोग सीधे-सादे और सच्चे थे। अधिकतर मनुष्य बौद्ध आचार रखते थे, और अहिंसा मत का ज़ोर था। लोग मांस और मदिरा का प्रयोग नहीं करते थे। इसलिए बाज़ार में इन वस्तुओं की दूकानें नहीं थीं। प्याज़ और लहसुन भी कोई नहीं

खाता था। सूअर और मुर्गी किसी के घर में नहीं देख पड़ते थे। केवल चाण्डाल ही पवित्र नही माने जाते थे। उन्हे नगर के बाहर रहना पड़ता था। साम्राज्य का विदेशो के साथ बहुत अच्छा व्यापार होता था, और विदेशी व्यापार के नियम भी बड़े उत्तम थे।

सारांश यह है कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का शासन बहुत उत्तम था। इसके राज्य मे लोग सदाचारी, धनी और सुखी थे।

प्रश्न

१ विक्रम-सम्वत् किसने चलाया ? इसका यह नाम कैसे पड़ा ?
२ विक्रमादित्य का वास्तविक नाम क्या था ?
३ विक्रमादित्य की राजधानी कौन सी थी ?
४ कालिदास कौन था ? इसका सब से प्रसिद्ध ग्रन्थ कौन सा है ?
५ फ़ाहियान कौन था ? वह भारत मे क्यो आया ? उसने इस देश और इसके निवासियो के विषय में क्या लिखा है ?
६ विक्रमादित्य किस धर्म को मानता था ?
७ सिद्ध करो कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का शासन बहुत उत्तम था ?

अध्याय ७

कालिदास

(एक सर्वश्रेष्ठ कवि)

बालको ! तुमने महाकवि कालिदास का नाम अवश्य ही सुना होगा। यह तुम्हारे देश के संस्कृत भाषा के एक ऐसे महाकवि हो गये है, जिनकी समानता संसार के अच्छे-अच्छे कवि नही कर सकते है। इस पाठ मे हम तुम्हे इन्ही महाकवि का कुछ हाल बतायेगे।

आज से कोई डेढ़ हज़ार वर्ष पहले हमारे देश मे शरदानन्द नाम के एक राजा हो गये है। इनके विद्योत्तमा नाम की एक कन्या थी, जो बड़ी ही निपुण और विद्वान् थी। जब राजकुमारी विवाह योग्य हुई, तो उसने प्रतिज्ञा की कि, "मैं उसी मनुष्य के साथ विवाह करूँगी जो मुझे शास्त्रार्थ मे हरा देगा।" राजकुमारी के सुयोग्य, विदुषी और रूपवती होने के कारण अनेक विद्वानो की इच्छा हुई कि हम उसे प्राप्त कर ले। इसलिए दूर-दूर से पण्डित लोग राजकुमारी से शास्त्रार्थ करने आने लगे, परन्तु कोई भी उसे शास्त्रार्थ मे न हरा सका। अन्त मे जब बड़े-बड़े पण्डित एक स्त्री से शास्त्रार्थ मे हार गये, तो वे बहुत लज्जित हुए, और उन्होने यह निश्चय किया कि, "इस राजकुमारी ने जो हमारा अपमान किया है इसका फल इसे ज़रूर मिलना चाहिए। कोई इस प्रकार का उपाय करना चाहिए कि इसका विवाह किसी ऐसे महामूर्ख से हो, जिससे यह जन्म भर पछताया करे।"

ऐसा निश्चय करके वे किसी मूर्ख की खोज में निकल पड़े। खोजते-खोजते उनको एक मनुष्य मिला, जो पेड़ पर बैठा हुआ था और पेड़ की जिस डाल पर बैठा था उसी को कुल्हाड़ी से काट रहा था। उन्होंने जान लिया कि इससे अधिक मूर्ख संसार में और कोई न होगा। उन्होंने उसे बड़ी आवभगत के साथ नीचे बुलाया, और उससे कहा, "हमारे साथ चल, हम तेरा विवाह एक राजा की बड़ी रूपवती लड़की से करा देंगे।" मूर्ख-राज राजा की लड़की से अपना ब्याह हो जाने के चाव मे उन पण्डितों के साथ हो लिया।

पण्डितो ने मूर्ख को ले जा कर अच्छी तरह से निल्हाया-धुलाया, और पण्डितो का जैसा भेस बना कर उसे राजकुमारी के पास ले जाने को तैयार कर लिया। उन्होने उसे इतनी पट्टी और पढ़ाई कि, 'तुम वहाँ चुपचाप आसन पर पालती मार कर बैठ जाना, और मुँह से एक शब्द भी न निकालना।" मूर्ख ने विवाह की उमंग मे यह बात मान ली। पण्डित लोग उसे बड़े आदर के साथ ले जा कर राज-सभा मे पहुँचे, और राजकुमारी से बोले, "यह हमारे वृहस्पति के समान विद्वान् गुरु हमारे हार जाने पर आप से शास्त्रार्थ करने आये हैं। आजकल यह तपस्या में लगे रहने के कारण मौन-व्रत धारण किये हुए है। अतएव इनसे आप जो कुछ शास्त्रार्थ करना चाहे संकेतों द्वारा करें। इशारो मे ही आपको यह उसका उत्तर देंगे।"राजकुमारी ने यह बात मान ली।

आमने-सामने आसन डाल कर राजकुमारी व मूर्खराज शास्त्रार्थ करने बैठे, और पण्डितो का समूह चारों ओर बैठ गया। राजकुमारी ने अपनी एक उँगली उठाई, जिसका मतलब था कि 'ईश्वर एक है'। परन्तु मूर्ख इससे यह समझा कि यह एक उँगली

दिखा कर मेरी एक आँख फोड़ना चाहती है। अतएव उसने शीघ्रता से दो उँगलियाँ उठाईं, जिनसे उसका आशय यह था कि 'मै तेरी दोनो आँखे फोड़ दूँगा।' परन्तु पण्डितो ने दो उँगलियो के इस संकेत से ऐसे-ऐसे गूढ़ अर्थ निकाले कि राजकुमारी को हार माननी पड़ी। फिर दूसरी बार राजकुमारी ने अपनी पाँचो उँगलियाँ उठाईं, जिससे उसका यह आशय था कि पाँच तत्त्वो से सृष्टि की रचना हुई है। इस संकेत से मूर्खराज समझा कि यह मेरे थप्पड़ मारना चाहती है। इसलिए उसने पाँचो उँगलियाँ मिला कर घूँसा दिखाया, जिसका आशय यह था कि, 'मैं तेरी घूँसे से ख़बर-लूँगा।' घूँसा दिखाने के संकेत से पण्डितो ने यह अर्थ निकाला कि सृष्टि की रचना पाँच तत्त्वो से तो अवश्य हुई है, परन्तु उनके मिल जाने से हुई है। इस कारण पाँचो तत्त्वो के इशारे की अलग-अलग पाँच उगलियो का घूँसे के आगे कोई मूल्य न ठहरा। अन्त में राजकुमारी को कपटी पण्डितो के बनावटी गुरुदेव के आगे हार माननी पड़ी। अब क्या था! मूर्खराज का विवाह राजकुमारी विद्योत्तमा के साथ हो गया। इधर मूर्खराज राजकुमारी के साथ विवाह हो जाने पर फूला नहीं समाता था, और उधर राजकुमारी भी उसे धुरन्धर पण्डित समझ कर बहुत प्रसन्न थी।

जब रात हुई और दोनो पति-पत्नी महल के ऊपर चित्रसारी मे सो रहे थे, तो दैवात् एक ऊँट के चिल्लाने का शब्द सुनाई दिया। राजकुमारी ने पूछा कि "यह कौन चिल्ला रहा है?" मूर्खराज अपनी मौन रहने की बात को भूल कर बोल उठा, "उट्र् चिल्ला रहा है।" राजकुमारी कुछ भ्रम मे पड़ी, और उसने फिर दो बार पूछा कि, "यह कौन चिल्ला रहा है?" मूर्खराज

फिर भी 'उट्र-उट्र' कहने लगा। संस्कृत मे ऊँट को 'उष्ट्र' कहते है। परन्तु मूर्ख 'उष्ट्र' शब्द का उच्चारण कब कर सकता था? अब राजकुमारी की समझ में आया कि उसे यह धोखा दिया गया है। अपना विवाह किसी विद्वान् के साथ न होकर एक मूढ़ आदमी के साथ हो जाने के कारण वह फूट-फूट कर रोने लगी। अन्त में उसने अपने मूर्ख पति को घर के बाहर निकाल दिया। मूर्ख अपनी मूढ़ता तथा निरक्षरता पर बड़ा लज्जित था। इसलिए उसने उसी समय विद्याध्ययन करने का दृढ़ संकल्प कर लिया।

इस प्रकार वह वज्रमूर्ख ज्ञानोपार्जन का निश्चय करके चल दिया। कहा जाता है कि इस समय उस की आयु क़रीब चालीस साल के थी। इतनी अवस्था होने पर भी उसने बड़े परिश्रम से विद्याध्ययन किया, और कुछ ही समय मे उसने सारा संस्कृत साहित्य, व्याकरण, दर्शन, शास्त्र आदि-पढ़ डाला। अब इसकी मूर्खता विद्वत्ता के रूप में बदल गई। पहले वह जितना महामूर्ख था, अब उतना ही भारी विद्वान् हो गया। इस तरह जब यह खूब पढ़-लिख कर विद्वान् होकर अपनी पत्नी राजकुमारी विद्यो-त्तमा के पास लौटा, तो उस समय द्वार के किवाड़ बन्द थे। किवाड़ बन्द देखकर संस्कृत में वह इस प्रकार बोला,—"अनावृत कपाटं द्वारं देहि" अर्थात् "किवाड़ खोलो"। राजकुमारी विद्योत्तमा ने बोली पहचान ली, और भीतर से ही उत्तर दिया "अस्ति कश्चिद्वाग्विशेषः" अर्थात् "बोलने में कुछ विशेषता है?" तत्पश्चात् राजकुमारी ने किवाड़ें खोलीं, और अब अपने पतिदेव को जो पहले निपट निरक्षर और मूढ़ था दिग्गज विद्वान् देख कर अति प्रसन्न हुई। यही मनुष्य 'कालिदास' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

कालिदास ने अपनी स्त्री के कहे हुए 'अस्ति', 'कश्चित्', 'वाक्' इन तीन शब्दो को आरम्भ मे रख कर तीन ग्रन्थ बनाये, जो 'मेघदूत', 'रघुवंश' और 'कुमारसम्भव' के नाम से प्रसिद्ध है। इनके अतिरिक्त कालिदास के 'शकुन्तला', 'विक्रमोर्वशी', 'मालविकाग्निमित्र' आदि ग्रन्थ भी बहुत प्रसिद्ध है। परन्तु इन सब मे शकुन्तला अधिक प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थ का अनुवाद संसार की सभी प्रसिद्ध भाषाओ मे हो गया है, और सभी जातियो के विद्वान् इसे आदर की दृष्टि से देखते है। जर्मनी के प्रसिद्ध कवि गटे ने तो यहाँ तक कह डाला है कि—"यदि नैपोलियन सारे देश को नष्ट कर रहा है तो वह प्रसन्नतापूर्वक ऐसा करे, केवल मेरी एक झोपड़ी को बची रहने दे जिस से मै शान्तिपूर्वक शकुन्तला नाटक का अध्ययन कर सकूँ"। एक दूसरे स्थान पर लिखता है—"यदि कोई मनुष्य स्वर्ग और पृथ्वी को एक ही स्थान पर देखना चाहे, तो वह शकुन्तला पढ़े"। संस्कृत-साहित्य महाकवि कालिदास का सर्वदा ऋणी रहेगा, और यदि यह कहा जाय कि कालिदास की कविता से संस्कृत-साहित्य मे नवीन स्फूर्ति आगई है, तो अत्युक्ति न होगी। जैसे तुलसीदास हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि हो गये है, उसी प्रकार कालिदास भी संस्कृत के सर्वोत्तम कवि माने जाते हैं।

महाकवि कालिदास राजा विक्रमादित्य के दरबार मे जो आज से १,५०० वर्ष पहले राज करते थे, रहते थे। जैसा तुम पढ़ चुके हो राजा विक्रमादित्य विद्या के बड़े रसिक थे और विद्वानों का आदर करते थे। उनके दरबार मे अनेक विद्वान् आश्रय पाते थे, जिनमे से नौ बहुत प्रसिद्ध थे। ये 'नवरत्न' कहलाते थे, और इनमे कालिदास सर्वश्रेष्ठ थे। विक्रमादित्य इनसे

बहुत प्रसन्न थे, और कहा जाता है कि उन्होंने इनको कश्मीर का शासक बना दिया था, जहाँ इन्होने पाँच वर्ष तक राज्य किया।

कालिदास यद्यपि जाति के ब्राह्मण थे, परन्तु शिकार के बड़े शौकीन थे यह एक बड़े चतुर और विलक्षण बुद्धि वाले मनुष्य थे। इनकी चतुराई की बहुत सी कहानियाँ प्रसिद्ध हैं, जिनमे से इनकी विलक्षण बुद्धि का परिचय देने वाली एक कहानी हम तुम्हें बतलाते हैं।

राजा विक्रमादित्य ने यह प्रसिद्ध कर रक्खा था कि जो कवि नया श्लोक बना कर सुनावेगा, उसे एक लाख रुपया पारितोषिक मिलेगा। परन्तु पारितोषिक प्राप्त करने मे कठिनाई यह थी कि राजा के दरबार में चार ऐसे प्रसिद्ध विद्वान् मौजूद थे, जिनमें एक को एक बार, दूसरे को दो बार, तीसरे को तीन बार और चौथे को चार बार सुन लेने से कोई भी श्लोक कण्ठस्थ हो जाता था। प्रत्येक कवि के लिए जो नया श्लोक बना कर लाता, यह आवश्यक था कि राजा को सुनाने के पहले वह इन पण्डितो को सुनावे, जिससे पता लग जाय कि वह श्लोक नया है अथवा पुराना। परन्तु जैसा हम अभी कह चुके हैं उन पण्डितो को कैसा भी श्लोक क्यों न हो शीघ्र ही याद हो जाता था और वे चट कह देते थे कि, "यह श्लोक तो पुराना है और हमें याद है"। ऐसी दशा देख कर एक कवि कालिदास के पीछे पड़ गये कि, "आप किसी तरह यह परितोषिक मुझे मिला दे"। उन्होने उसे उपाय बताया कि तुम एक ऐसा श्लोक बना कर ले जाओ जिस का आशय यह हो कि 'हे राजन्! आपके पिता बड़े धर्मात्मा राजा थे। उन्होंने मुझ से ६६ करोड़ रुपये का रत्न लिया था, उसे मुझे या तो वापस करिए, अन्यथा मेरे इस श्लोक को नवीन रचना

समझकर अपने प्रण के अनुसार एक लाख रुपये का पारितोषिक दीजिये'। उस कवि ने ऐसा ही किया। दरबारी कवि श्लोक को सुन कर बड़े असमंजस मे पड़ गये। उन्होंने सोचा कि, "यदि हम श्लोक को पुराना ठहरायेगे तो राजा को ९९ करोड़ रुपया देना पड़ेगा और नया कहेगे तो केवल एक लाख ही देना पड़ेगा। इसलिए उन्होने इस श्लोक को नया ही माना, और राजा को एक लाख रुपया देना पड़ा।

एक बार राजा ने कालिदास से पूछा, "तुम्हारी हथेली में बाल क्यों नही है?" कालिदास ने उत्तर दिया, "महाराज, आप मुझे इतने अधिक रुपये देते है कि उनकी रगड़ से मेरी हथेली के बाल उड़ गये है।" इस पर राजा ने कहा, "दूसरे मनुष्यो की हथेलियो पर भी तो बाल नही है।" कालिदास ने उत्तर दिया, "महाराज, उनकी हथेलियो के बाल इसलिए उड़ जाते हैं कि जब आप मुझे रुपये देते हैं और उन्हे नही देते तो वे खूब हाथ मलते है।" इस उत्तर से राजा बहुत प्रसन्न हुआ, और उसने कालिदास को बहुत सा धन दिया।

बालको! तुम को कालिदास के जीवन से शिक्षा लेनी चाहिए। संसार मे मूर्ख मनुष्य का कोई आदर नही करता; स्त्री तक अपने मूर्ख पति का निरादर कर देती है। मूर्ख से मूर्ख मनुष्य भी यदि उद्योग करे तो योग्य हो सकता है। किसी कवि ने सत्य कहा है कि—

करत करत अभ्यास के जड़ मति होत सुजान।
रसरी आवत जात ते सिल पर होत निसान॥

प्रश्न

१ विद्योतमा कौन थी ? उस के विवाह की क्या शर्त थी ?
२ पंडितों ने उसे किस प्रकार धोखा दिया ?
३ मूर्ख ने राजकुमारी की एक उँगली देख कर क्या समझा ?
४ उस मूर्ख ने घूँसा क्या समझ कर उठाया था ?
५ विद्योतमा ने कैसे पहिचाना कि उस का पति महामूर्ख है ?
६ वह महामूर्ख महा पंडित कालिदास कैसे बन गया ?
७ कालिदास के कौन कौन ग्रन्थ प्रसिद्ध है ?
८ 'नवरत्न' से तुम क्या समझते हो ?
९ विक्रमादित्य की मृत्यु के बाद कालिदास किस के यहाँ रहे ?
१० कालिदास की चतुराई के विषय में कोई कहानी सुनाओ ?
११ कालिदास के जीवन से तुम्हे क्या शिक्षा मिलती है ?
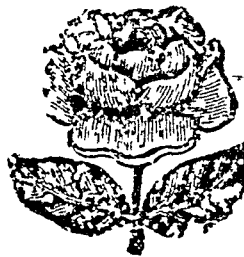
अध्याय ८

हर्ष

(एक विद्वान् राजा)

अशोक, चन्द्रगुप्त मौर्य और चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की तरह हर्ष भी बड़ा पराक्रमी और प्रतापी राजा था। ,यह सन् ६०६ ई० में गद्दी पर बैठा। उस समय उसकी अवस्था केवल १६ वर्ष की थी, परन्तु उसने प्रारम्भ ही से ४२ वर्ष तक बड़ी योग्यता-पूर्वक शासन किया। उस ने 'शिलादित्य' की परवी धारण की, और कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया।

हर्ष का राज्य पहले उत्तरी भारत के थोड़े से भाग ही पर था, इसलिए उसका पहला काम यह था कि उसने एक बहुत बड़ी सेना इकट्ठी की, जिसमे २०,००० पैदल, २०,००० सवार और ५,००० हाथी थे। इस सेना की सहायता से उसने बंगाल, राजपूताना, मालवा, गुजरात. पञ्जाब आदि अनेक देशो को अपने अधीन कर लिया। इन विजयो के बाद हर्ष का राज्य सारे उत्तरी भारत पर नर्मदा नदी तक फैल गया। नर्मदा के दक्षिण के देश पर पुलकेशिन द्वितीय नाम का राजा राज्य करता था। हर्ष ने उस पर भी चढ़ाई की, परन्तु उसे हार कर लौट आना पड़ा। इस प्रकार उस का राज्य नर्मदा नदी के दक्षिण की ओर नही बढ़ा।

हर्ष के शासन-काल मे भी एक प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग भारतवर्ष मे आया। उस का भी उद्देश्य यहाँ आने का वही था जो फ़ाहियान का था, अर्थात् बौद्ध-ग्रन्थो का अध्ययन। इस

यात्री ने भी जो कुछ इस देश में देखा, उसका बड़ा सुन्दर वर्णन लिखा है।

अशोक की तरह हर्ष भी बौद्ध धर्म का मानने वाला था। उस ने भी क़न्नौज मे बौद्ध पण्डितों की एक विराट् सभा की। ह्वैनसांग भी उस मे सम्मिलित था। इस सभा में २० राजा आये थे। पहले दिन बुद्धजी की मूर्ति स्थापित हुई, दूसरे दिन सूर्य की और तीसरे दिन शिवजी की पूजा हुई। फिर यह सभा क़न्नौज से उठ कर प्रयाग गई, और वहाँ गंगा यमुना के संगम पर सम्राट् ने हिन्दू, बौद्ध आदि साधुओ को अपने कोष का सारा धन लुटा दिया। वह हर पाँचवें वर्ष अपने कोष का धन बाँट दिया करता था, और राजसी वस्त्र उतार कर संन्यासियों के कपड़े पहन कर एक साधारण मनुष्य की तरह जीवन व्यतीत करता था। यद्यपि राजा स्वयं बौद्ध था, परन्तु जैन तथा हिन्दू धर्मों का आदर करता था। वह स्वयं शिव, सूर्य और बुद्ध तीनो की पूजा करता था। धर्म के कारण लोगों मे भी द्वेष-भाव नहीं था। ऐसे कुटुम्ब मौजूद थे, जिन मे हिन्दू, बौद्ध और जैन तीनों धर्मों के मानने वाले पाये जाते थे, और वे सब प्रेम-पूर्वक रहते थे।

देखो यह प्राचीन भारत के लिए बड़े गर्व की बात है कि इस देश में उस समय लोग धार्मिक पचड़ो पर एक दूसरे से कभी नही लड़ते थे। तुम कई ऐसे राजाओ का वर्णन पढ़ चुके हो जो एक विशेष धर्म के मानने वाले होते हुए भी सभी धर्मों को आदर की दृष्टि से देखते थे। यह इस देश के लिए बड़े गर्व की बात है, क्योंकि इसी काल में और इससे बाद भी संसार के अन्य देशों में धर्म के नाम पर बहुत ख़ून-ख़च्चर होता रहा,

और बड़े-बड़े हत्याकाण्ड हुए। एक धर्म वाले दूसरे धर्म वालों को बहुत सताते थे। क्या यह भारतवर्ष के लिए कम गौरव की बात है कि यहाँ प्राचीन हिन्दू-काल में धार्मिक सहिष्णुता का सदा दौरदौरा रहा ? क्या हम आशा कर सकते हैं कि वह समय हमारे देश मे फिर एक बार आयगा जब हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, पारसी, जैन, ईसाई आदि सभी अपने मतमतान्तरो के झगड़ो को छोड़ कर प्रेमपूर्वक रहने लगेगे और सब मिल कर देश की उन्नति का बीड़ा उठा लेगे ? अस्तु।

ह्वेनसांग ने हर्ष के शासन की भी बड़ी प्रशंसा की है। वह लिखता है कि हर्ष बड़ा उदारचित्त, पराक्रमी और योग्य शासक था। वह स्वयं राज्य के कामो की देख-भाल करता था। इस के लिए वह सदा दौरे किया करता था। उसके ये दौरे बरसात तक मे भी बन्द नहीं होते थे। दुष्टो के साथ बड़ा कड़ा बर्ताव किया जाता था, परन्तु सज्जनो के साथ सदा अच्छा व्यवहार होता था। शासन नरम था, परन्तु गुप्त राजाओ के समय का सा नही। कई प्रान्तो पर ऐसे राजा राज्य करते थे, जो हर्ष को कर देते थे। बड़े अपराध बहुत कम होते थे। फौजदारी क़ानून पहले समय से कुछ कठोर था। अपराधो का दण्ड बड़ा कड़ा होता था। अंग-भंग का भी दण्ड दिया जाता था। सड़को पर चोरो का भय था। स्वयं ह्वेनसांग २–३ बार लुट चुका था। कर बहुत हलके थे। मालगुज़ारी केवल राज्य की भूमि से वसूल की जाती थी, जो उपज का छठा भाग होती थी। देश मे शिक्षा का प्रचार खूब था। सारे राज्य मे बौद्ध-मठ और विहार थे, जहाँ लाखों विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। नालन्द, (जो विहार प्रान्त मे एक नगर था और जिसके भग्नावशेष अब तक

मौजूद हैं) शिक्षा का बहुत बड़ा केन्द्र था। यहाँ के विश्वविद्यालय मे विशेष कर बौद्धधर्म की शिक्षा दी जाती थी। परन्तु अन्य धर्मों के ग्रन्थ व अन्य विद्याएँ भी पढ़ाई जाती थीं। चीनी यात्री लिखता है कि यहाँ १०,००० विद्यार्थी शिक्षा पाते थे, और विद्यालय के खर्च के लिए राज्य की ओर से १०० गाँव लगे हुए थे।

हर्ष विद्वानों का आश्रयदाता तो था ही, परन्तु स्वयं भी बड़ा विद्वान् था। उसने संस्कृत मे नागचन्द्र, रत्नावली, प्रियदर्शिका आदि कई ग्रन्थ लिखे थे। संस्कृत व्याकरण पर भी उसने एक पुस्तक लिखी। विद्या-रसिक होने के साथ-साथ चित्रकारी में भी वह बड़ा कुशल था। महाकवि बाण जिसने 'हर्षचरित' और 'कादम्बरी' नामक दो पुस्तके लिखीं, इसका परम मित्र था और इसी के दरबार मे रहता था। हर्षचरित मे उसने हर्ष के शासन-सम्बन्धी अनेक बातों का वर्णन किया है। अनेक विद्वानों को राज्य की ओर से धन आदि से सहायता दी जाती थी।

हर्ष ने ह्वेनसांग का बड़ा सत्कार किया। वह देश मे कुल १६ वर्ष रहा। जब वह जाने लगा, तो हर्ष ने उसे बहुत धन दे कर बिदा किया और एक राजा को उस के साथ कर दिया कि वह उसे देश की सीमा तक कुशलपूर्वक पहुँचा आवे। हर्ष के समय मे प्रजा बड़ी सुखी थी। सभी मनुष्य आपस में प्रेमभाव से रहते थे। सती की प्रथा प्रचलित थी, अर्थात् किसी मनुष्य के मर जाने पर उस की विधवा स्त्री अपने पति के शव के साथ जल कर भस्म हो जाती थी। परन्तु कम उम्र के बच्चों का विवाह नहीं होता था। पर्दे की प्रथा नहीं थी। स्वयं हर्ष की विधवा बहिन राज्यश्री सभाओ में बैठती थी और वाद-विवाद करती थी।

हर्ष प्राचीन भारत का अन्तिम बड़ा सम्राट् था। उसकी मृत्यु के पीछे फिर कोई इतना बड़ा हिन्दू राजा नही हुआ। कुछ काल पीछे देश पर मुसलमानो के आक्रमण होने लगे, और धीरे-धीरे उन्होने सारे देश पर अपना आतंक जमा लिया। मुसलमानों में भी कई शासक बड़े प्रसिद्ध हो चुके है। इन मे से कुछ का वर्णन तुमको अगले पाठो मे बतलाया जायगा।

प्रश्न

१ हर्ष ने कौन सी पदवी धारण की थी ?
२ हर्ष की सेना कितनी थी ? उसकी सहायता से उसने कौन कौन देश जीते ?
३ हर्ष के समय मे दक्षिण मे कौन राज्य करता था ?
४ ह्वेनसांग भारत मे क्यो आया ? उसने भारत का क्या वर्णन लिखा है ?
५ हर्ष किस धर्म को मानता था ?
६ हर्ष अपनी धर्म सभा मे क्या करता था ?
७ सिद्ध करो कि हिन्दुओ के समय मे धार्मिक सहिष्णुता बहुत थी।
८ नालन्द कहाँ है ? यह इतिहास मे किसलिए प्रसिद्ध है ?
९ हर्ष ने कौन से ग्रन्थ लिखे ?
१८ महाकवि बाण कौन था ? उसके मुख्य-मुख्य ग्रन्थो के नाम बताओ।

अध्याय ९

महमूद गज़नवी

(मध्य एशिया का एक शासक)

बालको ! क्या तुम बतला सकते हो कि इस्लाम धर्म के मूल प्रचारक कौन थे ? इनका नाम हज़रत मुहम्मद था। इन का जन्म ५७० ई० में अरब देश के मक्का नगर मे हुआ था। इनके समय मे अरब निवासी एक दूसरे से बहुत लड़ते-भिड़ते थे। इस से मुहम्मद साहब को बड़ा दुःख हुआ, और उन्हे एकता का उपदेश दिया। मुहम्मद साहब को अपने जीवन में तो विशेष सफलता नहीं मिली, परन्तु उनके देहान्त के पीछे मुसलमानो ने उनकी शिक्षा पर बहुत कुछ काम किया। इस्लामी फ़ौजें योरुप मे स्पेन तक और एशिया मे चीन व हिन्दुस्तान तक धावा मारने लगीं। मुसलमान चारो ओर फैल गये। वे बहुत शक्तिशाली हो गये और उन्होने अपना राज्य भी बहुत बढ़ा लिया।

सब से पहला मुसलमान जिसने भारत पर आक्रमण किया था मुहम्मद बिन क़ासिम था, जो अरब मे रहता था। उस के बहुत दिन पीछे मध्य एशिया मे स्थित ग़ज़नी नगर के शासक सुबुक्तग़ीन ने भी भारत पर कई आक्रमण किये। सुबुक्तग़ीन का लड़का महमूद था, जिस का वर्णन इस पाठ में तुम को बतलाया जायगा।

अपने पिता की मृत्यु के पीछे महमूद जब गद्दी पर बैठा तो उसकी अवस्था केवल १६ वर्ष की थी। उस ने अपने शासन के

पहले चार वर्ष तो ख़ैबर दर्रे के उस ओर अपने राज्य को दृढ़ करने मे लगाये। फिर उसने भारत पर आक्रमण करने की ठानी। भारत पर महमूद के कुल १७ आक्रमण हुए। इन मे सहस्रो मनुष्य मारे गये, और वह अपार धन अपने देश को लूट कर ले गया। प्रत्येक आक्रमण मे महमूद की विजय हुई। इस का मुख्य कारण यह था कि उत्तरी भारत मे अनेक छोटे-छोटे राज्य थे, जिन पर राजपूत राजा राज्य करते थे। ये राजा आपस मे बहुत द्वेष रखते थे, और आवश्यकता पड़ने पर भी मिल कर कार्य नहीं कर सकते थे।

महमूद ने हिन्दुओ की फूट से ख़ूब लाभ उठाया। उस का पहला आक्रमण सन् १००१ ई० मे हुआ। यह आक्रमण पेशावर पर हुआ। लाहौर के राजा जयपाल ने बहुत सी सेना एकत्रित करके उस का सामना किया, परन्तु हार गया। उस की रानी यह आशा करती थी कि या तो वह जीत कर लौटेगा और या रण-क्षेत्र मे अपने प्राण गँवा देगा। इसलिए जयपाल को हारा हुआ घर लौटने पर लज्जा हुई और वह चिता पर जीवित जल कर भस्म हो गया।

जयपाल की मृत्यु के बाद उस का लड़का अनंगपाल गद्दी पर बैठा। महमूद ने अनंगपाल पर भी आक्रमण किया। अनंगपाल ने सब राजाओ से सहायता के लिए प्रार्थना की। दिल्ली, कन्नौज, उज्जैन, ग्वालियर, अजमेर आदि के हिन्दू राजाओ ने अपनी-अपनी सेनाएँ भेजी। पेशावर के मैदान मे दोनो ओर की सेनाएँ आ डटी। हिन्दुओ की सेना बहुत बड़ी हो गई। उसकी सहायता के लिए सीमान्त देश से शक्तिशाली खोखर जाति भी आ मिली। युद्ध प्रारम्भ हो गया। थोड़े ही समय मे लगभग

५,००० मनुष्य काम आये। हिन्दू बड़ी वीरता से लड़े। परन्तु ज्यों ही विजय होने वाली थी कि एक आकस्मिक घटना ऐसी हुई कि जिसने सारे मामले को पलट दिया। अनंगपाल का हाथी बिगड़ गया और मैदान से भाग निकला। उस की सेना तितर-बितर हो गयी। मुसलमानो ने हिन्दुओं का पीछा किया। लगभग २०,००० हिन्दू मारे गये। ३० हाथी और असंख्य धन महमूद के हाथ लगे।

इस विजय के पीछे महमूद का आक्रमण नगरकोट पर हुआ, जो हिन्दुओ का पवित्र तीर्थ था। महमूद ने क़िला ले लिया, और नगर तथा आस-पास के देश को ख़ूब लूटा। वह सोना-चाँदी और जवाहिरात के बहुत बड़े ढेर के सहित अपने देश को लौट गया। वहाँ के लोग इस सम्पत्ति को देख कर अवाक् रह गये। इस विजय के पीछे ही महमूद ने थानेश्वर के मन्दिर पर आक्रमण किया। मन्दिर को उसने तोड़-फोड़ डाला, और बहुत सा धन वह अपने देश को ले गया।

कुछ काल पीछे महमूद ने क़न्नौज पर आक्रमण किया। राह मे बरन (जिसे आजकल बुलन्दशहर कहते है) का राजा अधीनता स्वीकार कर के मुसलमान हो गया। फिर आगे चल कर मथुरा नगर को महमूद ने ख़ूब लूटा। अन्त में वह क़न्नौज पहुँचा । यहाँ का राजा राज्यपाल भाग गया। राजधानी ख़ूब लूटी गई, और बहुत से मन्दिर भी लूटे गये। विवश हो कर अन्त में राज्यपाल ने अधीनता स्वीकार कर ली, और महमूद अपने देश को लौट गया।

राज्यपाल के इस कार्य से अन्य हिन्दू राजा बड़े ही अप्रसन्न हुए। उन्होने कालिंजर के राजा गण्डा को अपना अगुआ बनाया,

और सब ने मिल कर उस पर चढ़ाई की। सम्मिलित सेना ने उसे पराजित कर के मार डाला। इस पर महमूद को बड़ा क्रोध आया, और वह शीघ्र ही एक बड़ी सेना ले कर कालिंजर पर चढ़ दौड़ा। महमूद राजपूतों की बड़ी सेना को देख कर घबराया। परन्तु गण्डा का साहस शीघ्र ही भङ्ग हो गया। वह युद्ध-क्षेत्र से भाग निकला। महमूद के हाथ ५८० हाथी और बहुत सा लूट का माल लगा।

महमूद का सोलहवाँ आक्रमण गुजरात में सोमनाथ के मन्दिर पर हुआ, क्योंकि वह इस मन्दिर के अपार धन का वर्णन सुन चुका था। कहा जाता है कि इस मन्दिर में ५६ खम्भे थे। इन पर बहुमूल्य रत्नों की पच्चीकारी का काम हो रहा था। जहाँ मूर्त्ति थी वहाँ सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँचता था, इसलिए मन्दिर के बीचो बीच सोने की जंजीर के सहारे एक बहुत बड़ा दीपक जलता था। मन्दिर के भीतर एक दूसरी २०० मन भारी सोने की जंजीर से बड़ा भारी घण्टा लटका करता था। मन्दिर के खर्च के लिए २०० गाँव लग रहे थे। यहाँ के देवता की पूजा के लिए २,००० पुजारी, ५०० नाचनेवाली, २०० गाने वाले और ३०० बाजे वाले थे। यात्रियों की हजामत बनाने के लिए ३०० नाई रहा करते थे। मूर्त्ति के स्नान के लिए प्रति दिन ५०० कोस की दूरी से गंगाजल आता था। मन्दिर की रक्षा के लिए बहुत से हिन्दू एकत्रित हो गये थे। हिन्दुओं ने बड़ी वीरता दिखाई और मुसलमानों के छक्के छुटा दिये। अपने साथियों का दिल टूटते देख महमूद ने उनसे कहा—"कहाँ भाग कर जाओगे? तुम्हारा घर हज़ारों मील की दूरी पर है। हिन्दू तुम्हें काट डालेंगे। अपमान की मृत्यु से लड़ कर मर जाना हज़ार गुना अच्छा है।"

इन जोशीले शब्दों से उनकी हिम्मत बढ़ गई और वे सब एकदम हिन्दुओ पर टूट पड़े। मन्दिर में महादेवजी की एक विशाल मूर्त्ति थी। महमूद ने उसे तोड़ना चाहा, तो मन्दिर के पुजारियो ने उससे प्रार्थना की कि, "आप इसे न तोड़िये, बदले में हम आपको बहुत सा धन देगे।" परन्तु महमूद ने उत्तर दिया, "मै मूर्ति तोड़ने वाला हूँ, बेचने वाला नहीं हूँ।" यह कह कर झट तलवार के वार से महमूद ने मूर्ति के दो टुकड़े कर डाले। फिर उसने मन्दिर को ख़ूब लूटा। वह अपार धन लेकर अपने देश को लौट गया। कहा जाता है कि यह माल तीन करोड़ दीनार (एक सोने का सिक्का) के मूल्य का था।

इन सब बातों से तुम शायद यह समझोगे कि महमूद केवल एक लुटेरा और डाकू था। परन्तु यह बात नहीं है। महमूद एक सुयोग्य सेनापति तो था ही, क्योंकि उसने एक छोटी सी पहाड़ी रियासत का स्वामी होकर बहुत बड़े राज्य को अपने आधीन कर लिया था। वह विद्वानो के सत्संग का बड़ा प्रेमी था, और अपने दरबार में उन्हे आश्रय देता था। फिरदौसी, अन्सारी, और अलबरूनी उन्हीं में से हैं। अलबरूनी संस्कृत का भी अच्छा पण्डित था। लूट के धन से उसने ग़ज़नी नगर को सुशोभित किया। बहुत से सुन्दर महल, पुस्तकालय, पाठशालाएँ, अजायब-घर, बाग़ीचे और इमारते बनवाईं।

प्रसिद्ध है कि एक दिन महमूद और उसका मन्त्री घोड़ों पर चढ़े जंगल में जा रहे थे। राह मे एक पेड़ पर दो उल्लू बैठे थे। उन्हे देख कर महमूद ने मन्त्री से कहा, "तुम मुझ से अक्सर कहा करते हो कि मै पक्षियो की बोली समझता हूँ। बताओ ये उल्लू आपस में क्या बाते कर रहे है।" मंत्री ने उत्तर दिया,

"जहाँपनाह, इनमें एक के लड़का और दूसरे के लड़की है। लड़के वाला कहता है कि यदि तुम मुझे दहेज में ५० ऊजड़ गाँव दो तो अपने लड़के का विवाह तुम्हारी लड़की के साथ कर दूँ। इस पर छोटी वाला उत्तर देता है कि अगर सुल्तान महमूद सलामत रहा तो पचास क्या पाँच सौ ऊजड़ गाँव दे सकता हूँ।" इस बात का महमूद पर बहुत प्रभाव पड़ा, और उसने गाँवों को उजाड़ना छोड़ दिया।

महमूद कंजूस था। एक बार उसने फ़िरदौसी कवि को अपनी प्रशंसा में शेर लिखने के उपलक्ष में एक शेर पर एक सोने का सिक्का देने का वचन दिया। फ़िरदौसी ने बड़े परिश्रम और योग्यता से एक उत्तम काव्य लिख डाला जिसमें ६०,००० शेरें थीं। परन्तु जब पारितोषिक का समय आया, तो महमूद ने उसे चाँदी के सिक्के दे कर टालना चाहा। फ़िरदौसी ने स्वीकार नहीं किया। वह अपने घर लौट गया। वहाँ उसने महमूद से नाराज़ हो कर उस की बुराई में बहुत से शेर लिख डाले। जब यह ख़बर महमूद के कानों तक पहुँची, तो वह बहुत घबराया। फिर जब उसके आदमी सोने की अशरफ़ियाँ लेकर फ़िरदौसी के मकान पर पहुँचे, तो क्या देखते हैं कि लोग कवि की लाश को बाहर ला रहे हैं। महमूद लालची भी था। धन के लोभ से ही उसने भारतवर्ष पर इतने आक्रमण किये। उसने अपने ही धर्म वालों को फ़ारस में लूटा था। कहा जाता है कि मरते समय महमूद ने अपनी सारी सम्पत्ति अपने सामने रखवाई और उसे देख कर वह फूट-फूट कर रोया, क्योंकि वह सोचने लगा कि यह सारा धन उसके पीछे ही रहा जाता है।

महमूद बड़ा न्यायी राजा था। वह एक उत्तम सेनापति भी था, परन्तु शासन-प्रबन्ध उसे बिल्कुल न आता था। इसलिए

उसकी मृत्यु के पीछे शीघ्र ही उसका राज्य खण्ड-खण्ड हो गया।

प्रश्न

१ हज़रत मुहम्मद कब और कहाँ पैदा हुए थे ?
२ सब से पहले किस मुसलमान ने भारत पर आक्रमण किया ?
३ महमूद ग़ज़नवी कौन था ? इसके पिता का नाम क्या था ?
४ पिता की मृत्यु के समय महमूद की अवस्था क्या थी ?
५ महमूद ने भारत पर कुल कितने आक्रमण किये ?
६ उसका पहला आक्रमण भारत में कब और कहाँ हुआ ?
७ जयपाल जीवित जल कर क्यों मर गया ?
८ राजा अनङ्गपाल की हार का क्या कारण था ?
९ हिन्दू राजाओं ने मिल कर राज्यपाल को क्यो मार डाला ?
१० महमूद ने कालिंजर पर क्यो चड़ाई की ?
११ महमूद ने सोमनाथ के आक्रमण के समय अपने साथियो का साहस कैसे बड़ाया ?
१२ सोमनाथ की लूट से महमूद के हाथ कितना माल लगा ?
१३ महमूद में क्या-क्या गुण थे ? उसके कुछ अवगुण भी बताओ ?
१४ मरते समय महमूद क्यो रोया था ?

अध्याय १०

पृथ्वीराज

(दिल्ली का अन्तिम हिन्दू राजा)

हर्ष की मृत्यु के पीछे उत्तरी भारत मे कई छोटे-छोटे राज्य स्थापित हो गये थे। इनके शासक प्राय: सभी राजपूत थे। ये कई सौ वर्ष तक उत्तरी भारत मे राज्य करते रहे। परन्तु सदा एक दूसरे से लड़ते रहे, और आपसी फूट के कारण उन्होने देश को बहुत हानि पहुँचाई। पृथ्वीराज, जिसे राय पिथौरा भी कहते है, दिल्ली का अन्तिम राजपूत राजा था। इसकी वीरता के गुण लोग अब तक उत्तरी भारत मे गाया करते है। इस शूरवीर राजा के पीछे दिल्ली मे हिन्दुओ का राज्य कभी नही हुआ। इसी का वर्णन इस पाठ मे हम तुमको बतलायँगे।

राजपूत-काल के अन्तिम दिनो मे अर्थात् आज से ७००-८०० वर्ष पहले उत्तरी भारत मे तीन प्रसिद्ध क्षत्रिय-वंश राज्य करते थे—तोमर, चौहान और राठौर। तोमर-वंश के राजाओ की राजधानी दिल्ली, चौहान-वंश के राजाओं की राजधानी अजमेर और राठौर-वंश के राजाओ की राजधानी क़न्नौज थी। उस समय मे दिल्ली मे तोमर-वंश का राजा अनङ्गपाल राज करता था। उसके कोई सन्तान न थी, इस कारण उसने अपना उत्तराधिकारी चौहान-वंश के राजा पृथ्वीराज को, जो उसका धेवता था, बनाया। राठौर-वंश का राजा जयचन्द्र जो क़न्नौज मे राज करता था और पृथ्वीराज की तरह स्वयं भी अनङ्गपाल का धेवता होता था, इस प्रकार पृथ्वीराज को दिल्ली का राजा बनाये जाने से

बहुत रुष्ट हुआ। वह समझता था कि मेरे नाना अनङ्गपाल मुझे ही अपना उत्तराधिकारी बनायेंगे, क्योंकि वह अवस्था में पृथ्वीराज से बड़ा था। पृथ्वीराज और जयचन्द्र दोनों रिश्ते में भाई-भाई होते थे; परन्तु दिल्ली के राज्य ने उन दोनो में ऐसी फूट डाली, जिसने भारतवर्ष को सर्वदा के लिए परतन्त्रता की ज़ंजीरो से कस दिया।

पृथ्वीराज चौहान

अब पृथ्वीराज अजमेर और दिल्ली दो राज्यों का स्वामी हो गया। परन्तु उसने अपनी राजधानी दिल्ली ही रक्खी। वह बड़ा प्रतापी और शूरवीर राजा था। भारतवर्ष के प्राचीन धनुर्विद्या के शब्द-भेदी बाणो का चलाना वह जानता था। अर्थात् आँख से देखे बिना ही केवल शब्द सुन कर ठीक निशाना लगा सकता था।

उसके दिल्ली के राज्य सिंहासन पर बैठने के थोड़े ही समय बाद मुहम्मद गोरी नामक राजा ने, जो मध्य-एशिया मे गोर में राज्य करता था, उस पर धावा बोल दिया। पृथ्वीराज ने उसे तरायन नामक स्थान पर बुरी तरह से हरा दिया। राजपूतों ने उसका पीछा किया, परन्तु मुहम्मद गोरी प्राण बचा कर बचीखुची सेना के साथ अपने देश को भाग गया।

इधर कन्नौज के राजा जयचन्द्र ने पृथ्वीराज को नीचा दिखाने के लिए और अपने को सब से बड़ा राजा प्रकट करने के उद्देश से अश्वमेध यज्ञ किया, और साथ ही अपनी कन्या संयोगिता का स्वयंवर भी रचा। संयोगिता बड़ी सुयोग्य और रूपवती थी। वह पृथ्वीराज के गुणो की बहुत प्रशंसा सुन चुकी थी। इसलिए उसने पृथ्वीराज को ही वरमाला पहनाने की ठान ली थी। उधर पृथ्वीराज भी संयोगिता के सौंदर्य की प्रशंसा सुन चुका था। अतएव उसने भी संयोगिता को स्वयंवर-सभा से हरण करने का पूरा इरादा कर लिया। जब इस महोत्सव का समय आया, तो जयचन्द ने अपने सभी नातेदार राजाओ को निमंत्रित किया। जयचन्द ने पृथ्वीराज को निमंत्रित तो किया, परन्तु उसे अपमानित करने के लिए द्वारपाल के स्थान पर उसकी सोने की मूर्ति बनवा कर रख दी।

पृथ्वीराज स्वयंवर सभा मे तो सम्मिलित होने न आया, परन्तु वेष बदल कर अपने कुछ हथियारबन्द सामन्तो सहित आ गया, और दरवाज़े पर तमाशा देखने वालो की भीड़ मे खड़ा हो गया। जब संयोगित स्वयंवर-सभा मे आई, तो उसने किसी भी राजा-महाराजा के गले मे, जो उसे प्राप्त करने की इच्छा से आये हुए थे, वरमाला न डाली। वह उन सब को छोड़ कर

सभामण्डप के दरवाज़े पर जहाँ पृथ्वीराज की सोने की मूर्ति रक्खी थी चली आई। वहाँ आ कर उसने उस मूर्ति के गले मे जयमाल डाल दी। ऐसा होते ही पृथ्वीराज ने, जो वहीं भीड़ मे मौजूद था, संयोगिता का हरण किया, और उसे अपने साथ घोड़े पर बिठा कर दिल्ली को ले भागा। जब जयचन्द को यह ख़बर लगी, तो उसने पृथ्वीराज का पीछा किया, परन्तु उसके बहादुर वीरो ने उसकी सेना से वही युद्ध करना आरम्भ कर दिया, जिस मे दोनों ओर के योद्धा काम आये। पृथ्वीराज को दिल्ली तक पहुँचने का समय मिल गया, और वहाँ पहुँच कर बड़ी धूमधाम से उसका विवाह संयोगिता के साथ हो गया।

जयचन्द ने यह चाहा था कि मैं पृथ्वीराज का अपमान करूँ, परन्तु वह स्वयं बहुत अपमानित हो गया। अब वह पृथ्वीराज का प्रबल शत्रु हो गया। उसने पृथ्वीराज के कट्टर शत्रु मुहम्मद ग़ोरी को, जो उससे बुरी तरह पराजित होकर क्रोध मे बैठा था, उभारा, और उसको लिखा कि "आप पृथ्वीराज पर चढ़ाई करें तो मै आपकी सहायता करूँगा।" परन्तु कुछ विद्वानो का ख़याल है कि यह बात बिल्कुल ग़लत है। मुहम्मद ग़ोरी अब की बार बड़ी सजधज के साथ युद्ध की तैयारी कर रहा था। तिस पर उसे पृथ्वीराज और जयचन्द की फूट का सहारा मिल गया। बस फिर क्या था! १ लाख २० हज़ार फ़ौज लेकर उसने पृथ्वीराज पर चढ़ाई कर दी। अब शूरवीर पृथ्वीराज बहुत विलासी होगया था। परन्तु फिर भी यदि वह शत्रु के प्रपञ्चो से बच कर असावधानी से न लडता तो अवश्य उसकी विजय होती। पराजित शत्रु का हराना मामूली बात समझ कर वह बहुत ही लापरवाही से लड़ा, जिसका फल यह हुआ कि युद्ध-क्षेत्र में राजपूतो के पैर उखड़ गये, और पृथ्वीराज क़ैद कर लिया गया।

पृथ्वीराज के दरबार मे चन्द भाट नाम का कवि रहता था जो बड़ा शूरवीर व योद्धा भी था। यह हिन्दी भाषा का आदि कवि माना जाता है। इसने 'पृथ्वीराज रासो' नामक एक काव्य लिखा है, जिसमे इसने पृथ्वीराज का सारा वर्णन लिखा है। इसी ग्रन्थ मे लिखा है कि मुहम्मद गोरी पृथ्वीराज को कैद करके गज़नी ले गया और उसकी आँख निकलवा कर उसे अन्धा करके क़ैदखाने मे डाल दिया। कुछ समय पीछे अवसर पा कर पृथ्वीराज ने चन्दभाट के सुझाये जाने पर जो उसी के साथ क़ैद हो कर ग़ज़नी गया था, शब्दभेदी बाण द्वारा मुहम्मद ग़ोरी को मार दिया। परन्तु इतिहासकार इस बात से सहमत नहीं है। वे लिखते है कि पृथ्वीराज युद्ध क्षेत्र से भागा, और मुहम्मद गोरी ने उसे पकड़ कर सरस्वती नगर के पास मार डाला। पृथ्वीराज की मृत्यु के पश्चात् उसकी स्त्री संयोगिता ने भी अपने प्राण त्याग दिये। इस प्रकार पृथ्वीराज का राज्य मुहम्मद गोरी के हाथ मे आया।

अगले वर्ष मुहम्मद ग़ोरी ने भारत पर फिर चढ़ाई की, और उसने जयचन्द के राज्य पर धावा बोल दिया। अब ग़ोरी की शक्ति बहुत बढ़ गई थी, इस कारण जयचन्द उसके मुकाबिले मे हार गया और लड़ाई मे मारा गया। अब भारत के दोनो बड़े राज्य मुहम्मद गोरी के हाथ आये। जयचन्द और पृथ्वीराज की फूट के कारण मुसलमानो का राज्य भारत मे स्थापित हो गया। परन्तु मुहम्मद ग़ोरी ने भारत मे एक दिन भी राज्य नहीं किया। लूट का माल ले कर जिसमे निरा सोना और जवाहिरात थे और जो उसे काशी, मथुरा, क़न्नौज आदि शहरो के लूटने से मिला था वह ग़जनी चला गया, और अपने दास क़ुतुबुद्दीन को दिल्ली का शासक बना कर यहाँ छोड़ गया। इसी

समय से भारतवर्ष में मुसलमानों का स्थायी साम्राज्य स्थापित हुआ। मुहम्मद गोरी के आक्रमणों का ही यह फल हुआ कि ६५० तक दिल्ली के सिंहासन पर कोई न कोई मुसलमान शासक रहा।

पृथ्वीराज दिल्ली का अन्तिम हिन्दू सम्राट् था। यदि उस का जयचन्द से वैर न होता तो वैरी सुगमतापूर्वक विजय नहीं पा सकता था। इस पाठ से तुम को यही शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए कि आपसी फूट से बहुत हानि होती है। यदि पृथ्वीराज और जयचन्द में अनबन न होती तो हिन्दुओं का राज्य भारत से इतना शीघ्र न उठ जाता।

प्रश्न

१ दिल्ली का अन्तिम राजपूत कौन था ?

२ पृथ्वीराज और जयचन्द में आपस मे फूट का क्या कारण था ?

३ संयोगिता के स्वयंवर में जयचन्द ने पृथ्वीराज का अपमान कैसे किया ?

४ संयोगिता-हरण का क्या फल हुआ ?

५ जयचन्द ने पृथ्वीराज से किस प्रकार बदला लिया ?

६ युद्ध में पृथ्वीराज की हार के क्या कारण थे ?

७ चन्द कवि के विषय में क्या जानते हो।

८ मुहम्मद गोरी के आक्रमणों का क्या फल हुआ।

पृथ्वीराज के दरबार मे चन्द भाट नाम का कवि रहता था जो बड़ा शूरवीर व योद्धा भी था। यह हिन्दी भाषा का आदि कवि माना जाता है। इसने 'पृथ्वीराज रासो' नामक एक काव्य लिखा है, जिसमे इसने पृथ्वीराज का सारा वर्णन लिखा है। इसी ग्रन्थ मे लिखा है कि मुहम्मद गोरी पृथ्वीराज को कैद करके गज़नी ले गया और उसकी आँख निकलवा कर उसे अन्धा करके कैदखाने मे डाल दिया। कुछ समय पीछे अवसर पा कर पृथ्वीराज ने चन्दभाट के सुझाये जाने पर जो उसी के साथ क़ैद हो कर गज़नी गया था, शब्दभेदी बाण द्वारा मुहम्मद गोरी को मार दिया। परन्तु इतिहासकार इस बात से सहमत नहीं है। वे लिखते है कि पृथ्वीराज युद्ध-क्षेत्र से भागा, और मुहम्मद गोरी ने उसे पकड़ कर सरस्वती नगर के पास मार डाला। पृथ्वीराज की मृत्यु के पश्चात् उसकी स्त्री संयोगिता ने भी अपने प्राण त्याग दिये। इस प्रकार पृथ्वीराज का राज्य मुहम्मद गोरी के हाथ मे आया।

अगले वर्ष मुहम्मद ग़ोरी ने भारत पर फिर चढ़ाई की, और उसने जयचन्द के राज्य पर धावा बोल दिया। अब गोरी की शक्ति बहुत बढ़ गई थी, इस कारण जयचन्द उसके मुकाबिले मे हार गया और लड़ाई मे मारा गया। अब भारत के दोनो बड़े राज्य मुहम्मद ग़ोरी के हाथ आये। जयचन्द और पृथ्वीराज की फूट के कारण मुसलमानो का राज्य भारत मे स्थापित हो गया। परन्तु मुहम्मद ग़ोरी ने भारत मे एक दिन भी राज्य नही किया। लूट का माल ले कर जिसमे निरा सोना और जवाहिरात थे और जो उसे काशी, मथुरा, कन्नौज आदि शहरो के लूटने से मिला था वह ग़जनी चला गया, और अपने दास क़ुतुबुद्दीन को दिल्ली का शासक बना कर यहाँ छोड़ गया। इसी

समय से भारतवर्ष में मुसलमानों का स्थायी साम्राज्य स्थापित हुआ। मुहम्मद गोरी के आक्रमणों का ही यह फल हुआ कि ६५० तक दिल्ली के सिंहासन पर कोई न कोई मुसलमान शासक रहा।

पृथ्वीराज दिल्ली का अन्तिम हिन्दू सम्राट् था। यदि उस का जयचन्द से बैर न होता तो बैरी सुगमतापूर्वक विजय नहीं पा सकता था। इस पाठ से तुम को यही शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए कि आपसी फूट से बहुत हानि होती है। यदि पृथ्वीराज और जयचन्द में अनबन न होती तो हिन्दुओं का राज्य भारत से इतना शीघ्र न उठ जाता।

प्रश्न

१ दिल्ली का अन्तिम राजपूत कौन था ?

२ पृथ्वीराज और जयचन्द मे आपस में फूट का क्या कारण था ?

३ संयोगिता के स्वयंबर में जयचन्द ने पृथ्वीराज का अपमान कैसे किया ?

४ संयोगिता-हरण का क्या फल हुआ ?

५ जयचन्द ने पृथ्वीराज से किस प्रकार बदला लिया ?

६ युद्ध में पृथ्वीराज की हार के क्या कारण थे ?

७ चन्द कवि के विषय में क्या जानते हो।

८ मुहम्मद गोरी के आक्रमणों का क्या फल हुआ।

अध्याय ११

आल्हा और ऊदल

(दो शूरवीर बालक)

बालको ! तुमने आल्हा व ऊदल के नाम अवश्य सुने होगे। तुममे से जिस किसी ने कुछ भी काल के लिए किसी गाँव मे निवास किया होगा, उसने "आल्हा" अवश्य सुनी होगी आल्हा मे इन्हीं शूरवीरो की कथा का वर्णन है। इनकी वीरता की कथा सुनते-सुनते नपुंसको तक के हृदयो मे वीरता का जोश एक-दम उमड़ आता है।

आज से कोई ८०० वर्ष पहले की बात है कि जिस समय दिल्ली मे पृथ्वीराज राज्य करते थे, उसी समय महोत्रे मे परमाल नाम का एक राजा राज्य करता था। राजा परमाल के यहाँ देवल नाम की एक विधवा स्त्री रहती थी, जिसके आल्हा और ऊदल नाम के दो पुत्र थे। देवल बड़ी समझदार और शूरवीरा स्त्री थी। विधवा और अनाथिनी होते हुए भी बडी हिम्मत वाली थी। जिस समय उसके दोनो पुत्र आल्हा और ऊदल बच्चे ही थे, उस समय ही से उसने ऐसी कोशिश की कि वे दोनो बच्चे अच्छे योद्धा बने। वह अकेली ही अपने दोनो बच्चो को जंगल मे ले जाती और वहाँ उन्हे हथियार चलाना सिखाती। तलवार का चलाना और उसके वार को रोकना, निशाना बाँधना और तीर चलाना, तथा भाले, बरछी और कटारी आदि सभी अस्त्र-शस्त्र की विद्या मे अपने पुत्रो को अभ्यास कराती। कभी उन्हे घोड़े पर

चढ़ना सिखाती; स्वयं घोड़े पर चढ़ कर उनके घोड़ो को दौड़ाती और जंगली नाले व खार-खड्डो को उनसे पार करवाती। कभी-कभी हिरण, जंगली सूअर, बाघ आदि जंगली पशुओ का उनसे शिकार कराती। सारांश यह कि उसने अपने दोनों बच्चो को साहसी और शूरवीर बनाने मे कोई बात उठा न रक्खी थी।

जब दोनों बच्चे आल्हा और ऊदल इस प्रकार अपनी मा से शिक्षा पाकर सभी प्रकार योग्य हो गये और युवावस्था को प्राप्त करने लगे, तो परमाल इन दोनों में वीरो के से लक्षण देख कर अति प्रसन्न हुआ और अपने दरबार में इनका अधिक आदर करने लगा। परन्तु परमाल का साला, जिसका नाम माहिल था, इन दोनो की वीरता, बहादुरी और राज्य-दरबार मे इनका अधिक सम्मान देख कर कुढ़ने लगा। उसकी इच्छा हुई कि किसी प्रकार इन दोनो को ऐसी हानि पहुॅचानी चाहिए, जिससे इनकी बढ़ती हुई शक्ति रुक जाय। इसी नीयत से उसने एक दिन ऊदल को ताना मारते हुए कहा कि, "कोरी वीरता की डींग मारने से क्या होता है। यदि कुछ वीरता रखते हो और योद्धा बनते हो, तो अपने पिता देसराज के मारने वाले से बदला क्यों नही लेते हो ?" ऊदल को यह बात लग गई, और उसने हठ कर के माहिल से पूछा कि, "बताओ कौन मेरे पिता का मारने वाला है ? मै अभी उसे यमधाम पहुॅचाने का इरादा रखता हूॅ"। माहिल ने उत्तर में केवल यह कहा, "यह सब हाल अपनी माता देवल से पूछो, वही तुमको अच्छी तरह बता सकेगी"।

विचारने की बात है कि आल्हा और ऊदल को अभी तक इतना भी पता न था कि उनके पिता कौन थे और उन्हे किसने मारा था। ऊदल माहिल के पास से जोश मे भरा हुआ अपनी

माता के पास आया और चरणों मे मस्तक रख कर उसने माता से पूछा कि, "माता ! अभी बता दे कि मेरे पिता का मारने वाला कौन है। माहिल ने मुझ से आज ऐसी कड़ी बात कही है कि तुम वीर बनते हो, परन्तु तुम से अप ने पिता के मारने वाले से बदला नही लिया जाता ? इसलिए हे माता ! मै पहले अपने पिता के मारने वाले को मारूँगा, और फिर पीछे कोई काम करूँगा। शीघ्र बता मेरे पिता का मारने वाला कौन है।" माता देवल सब बाते ताड़ गई। उसने ऊदल को समझाया कि, "हे पुत्र ! माहिल तुम्हे देख कर कुढ़ता है। वह तुम्हारा बुरा चाहता है। उसकी इच्छा है कि अभी ये बच्चे है, इसलिए किसी लड़ाई मे इन्हे भिड़ा दिया जाय, तो ये अच्छी तरह मारे जावेंगे। इसलिए हे बेटे ! अभी तुम अपने पिता के मारने वाले से बदला लेने के योग्य नही हो। जब समय आयगा तब मै स्वयं ही कह दूँगी।' परन्तु ऊदल ने बहुत हठ किया, और अन्त मे देवल को उसे सारा हाल बताना पड़ा। उसने कहा, "हे पुत्र ! तुम्हारे पिता का मारने वाला माँडा का राजा करिगा है। तुम्हारे पिता देसराज के पास एक प्रसिद्ध घोड़ा 'पपीहा' और एक मशहूर हाथी 'विजय' था। माँडा ने इन्हीं के लिए तुम्हारे पिता पर चढ़ाई की। लड़ाई मे तुम्हारे पिता हार गये, और करिगा ने उन्हे क़ैद कर लिया। वह घोड़ा तथा हाथी, और सारी सम्पत्ति भी लूट ली, और मेरे पास जो नौ लाख का हार था वह भी छीन लिया। इस तरह करिगा सारे लूट के माल को ले कर और तुम्हारे पिता को क़ैद कर के माँडा ले गया। वहाँ जा कर उसने तुम्हारे पिता को कोल्हू में पेर कर मार डाला, और उसका शीश काट कर अपने महल के फाटक पर टाँग दिया, जो आज तक वही टँगा हुआ है।"

यह सारा हाल सुन कर ऊदल का रक्त खौल उठा, और क्रोध के मारे उसका चेहरा लाल हो गया। उसने वहीं अपनी मा के सम्मुख प्रतिज्ञा की कि, "यदि मै उस माँडा के करिगा को मार कर उसकी बोटियाँ चीलो को न खिलाऊँ, अश्व पपीहा और विजय गज को लौटा कर न लाऊँ, और हे माता! तुझे तेरा वह नौ लाख का हार फिर न पहनाऊँ, तो आज से देसराज का पुत्र न कहाऊँगा और महोबे मे लौट कर मुँह न दिखाऊँगा"। माता देवल समझ गई कि इस समय ऊदल जोश में है और यह किसी तरह भी इस समय करिगा से लड़ाई किये बिना न मानेगा। इसलिए उसने वीरो का सा वेष बनाया और सेना को तैयार किया। आल्हा और ऊदल अपने साथियो के साथ तैयार हो गये, और अपनी माता तथा सेना के साथ करिगा के राज्य की ओर चल दिये।

माँडा पहुँच कर आल्हा-ऊदल ने सेना को तो लड़ाई होते समय मदद करने के लिए बाहर ही छोड़ा, और आप अपनी माता तथा दो और वीर साथियों के साथ वेष बदल कर नगर में घुस गये। करिगा के महल के फाटक पर अपने पिता का कटा हुआ शीश देख कर उनका उत्साह कई गुना बढ़ गया, और अवसर पाकर उन्होंने करिंगा पर धावा कर दिया। दोनो ओर की सेनाओं मे डेढ़ पहर बड़े ज़ोरों की लड़ाई हुई। अन्त में आल्हा-ऊदल की मार के आगे करिगा की हार हुई, और ऊदल ने तलवार के एक वार मे उसका शीश धड़ से अलग कर दिया। इसके पीछे ऊदल ने करिंगा की रानी से नौ लाख का हार छीन लिया, और अश्व पपीहा और विजय गज को भी अपने क़ाबू मे कर लिया। करिगा की लाश को काट कर उसकी बोटियाँ चीलो को खिलाई गईं। ऊदल ने नौ लाख का हार अपनी माता को पहना

कर उसके चरणों में सिर रक्खा, और अश्व पपीहा तथा विजय गज को लेकर महोवे को प्रस्थान किया।

इस जीत से आल्हा-ऊदल की बड़ी ख्याति हुई। बड़े-बड़े शूरवीर उनका लोहा मानने लगे। परमाल अपने दो युवक वीरों की ऐसी वीरता देख कर अति प्रसन्न था। अब ऊदल ने परमाल की सेना लेकर पृथ्वीराज पर चढ़ाई कर दी, और उसे युद्ध में हरा कर उसकी राजकुमारी वेला का परमाल के राजकुमार ब्रह्मा के लिए अपहरण किया, और ब्रह्मा का विवाह वेला के साथ करा दिया। इस प्रकार जब परमाल और पृथ्वीराज आपस में समधी के सम्बन्ध में बध गये, तो एक समय पृथ्वीराज ने परमाल से किसी कार्य के लिए पाँच घोड़े माँगे। ये पाँचों घोडे आल्हा ऊदल को बहुत प्यारे थे। परन्तु परमाल ने आल्हा ऊदल के मना करने पर भी पृथ्वीराज को घोड़े दे दिये। इस कारण आल्हा-ऊदल की परमाल से अनबन हो गई, और वे उसका दरबार छोड़ कर कन्नौज के राजा जयचन्द के यहाँ चले गये।

राजा जयचन्द ने इन दोनों वीरों को अपने यहाँ आदर-सत्कार के साथ रक्खा। आल्हा-ऊदल ने भी जयचन्द के राज्य में बहुत सुधार किये, और उसके बहुत से राज्य-सम्बन्धी कार्यों को सम्हाला। उधर अब पृथ्वीराज ने अवसर पा कर परमाल पर उसकी राजकुमारी का अपहरण करने की नीयत से चढ़ाई कर दी। परमाल को इस समय अपने यहाँ आल्हा-ऊदल के न होने का बड़ा पछतावा हुआ। परन्तु फिर भी उसने आल्हा-ऊदल को अपनी सहायता के लिए सँदेशा भेजा। आल्हा-ऊदल जय-चन्द से आज्ञा ले कर परमाल की सहायता करने के लिए आये, और घमासान युद्ध के बाद पृथ्वीराज को हरा दिया।

इस प्रकार पृथ्वीराज को हरा कर आल्हा-ऊदल की इच्छा हुई कि अब ब्रह्मा की स्त्री बेला का डोला, जो पृथ्वीराज की लड़की थी, ज़बरदस्ती दिल्ली से लाया जाय। इसके लिए उन्होंने ब्रह्मा को साथ लेकर पृथ्वीराज पर धावा बोल दिया। पृथ्वीराज पहले हार खा चुका था, इसलिए उसने बड़ी तैयारी से लड़ना आरम्भ किया। फल यह हुआ कि इस युद्ध मे ब्रह्मा और ऊदल दोनो मारे गये। ब्रह्मा की स्त्री बेला अपने पति के शव के साथ सती हो गई।

प्रसिद्ध है कि आल्हा और ऊदल दोनो को देवी का यह वरदान था कि तुममे से एक आदमी अमर रहेगा। ऊदल के मारे जाने पर यह अमरौती आल्हा को मिली। यह बात तो स्पष्ट है कि आल्हा किसी युद्ध नहीं मारा गया। ऊदल के मारे जाने के पश्चात् वह हिमालय की ओर चला गया और वहाँ पता नहीं कि फिर उसका क्या हुआ। ये दोनों भाई वास्तव में बड़े वीर थे, उनका नाम उत्तरी भारत मे आज तक बड़ी श्रद्धा से लिया जाता है और उनकी वीरता की कहानियाँ घर-घर मे कही जाती हैं।

प्रश्न

१ आल्हा और ऊदल की माता का क्या नाम था?

२ उनको कैसी शिक्षा दी गई थी?

३ माहिल आल्हा और ऊदल से क्यों कुढ़ता था?

४ करिंगा ने देसराज को क्यों मारा था?

५ करिंगा देसराज का क्या-क्या सामान ले गया था?

६ पिता की मृत्यु का हाल सुन कर ऊदल ने क्या प्रतिज्ञा की?

७ आल्हा ऊदल ने करिंगा से कैसे बदला लिया ?

८ पृथ्वीराज और आल्हा-ऊदल का सम्बन्ध कैसे जुड़ा ?

९ परमाल से आल्हा ऊदल की अनबन कैसे हो गई ?

१० आल्हा और ऊदल की मृत्यु किस युद्ध में हुई ?

११ "आल्हा" नामक पुस्तक के कोई अंश जो तुम्हे याद हों सुनाओ ?

अध्याय १२

सुल्तान अलाउद्दीन

(*दिल्ली का सब से प्रसिद्ध सुल्तान*)

अलाउद्दीन भारत का पहला मुसलमान शासक था, जिसने यहाँ एक विशाल राज्य स्थापित करने की चेष्टा की। अपने चचा व श्वसुर जलालउद्दीन के समय मे ही अलाउद्दीन ने सब से पहले दक्षिण पर आक्रमण किया था। अलाउद्दीन ने यह प्रसिद्ध कर दिया कि मेरे चचा ने मुझे देश से निकाल दिया है और मै केवल शरण चाहता हूँ। देवगिरि का राजपूत राजा धोखे में आ गया। उसने उसे अपने यहाँ ठहराया, परन्तु एक दिन अकस्मात् वह अपने सिपाहियों सहित राजा की सेना पर टूट पड़ा। राजा को इस छल का कब पता था। वह तैयार न था, इसलिए हार गया। कहा जाता है कि लूट में अलाउद्दीन को १,००० मन चाँदी, ६०० मन सोना, ७ मन मोती और २ मन जवाहिरात हाथ लगे। इस अपार धन को ले कर जब वह लौटा तो सुल्तान जलालउद्दीन फूला न समाया। उसने अलाउद्दीन से भेंट करने की इच्छा प्रकट की। अलाउद्दीन ने कहा कि यदि सुल्तान मुझ से मिलना चाहे तो बिना हथियार के अकेले मे मिले। ऐसा ही किया गया। परन्तु जब अलाउद्दीन उससे गले मिल रहा था, तो अलाउद्दीन के एक सिपाही ने, जिससे उसने पहले ही कह रक्खा था, सुल्तान पर वार किया और उसका काम तमाम कर दिया।

अपने चचा की हत्या के बाद अलाउद्दीन सन् १२९६ ई० में गद्दी पर बैठा। फिर उसने जलालउद्दीन के लड़कों तथा अन्य

सम्बन्धियों का वध करवा डाला, और सरदारों तथा जनता को बहुत सा धन बाँटा जिससे वे उसकी हत्याओं को भूल जायँ।

अलाउद्दीन बड़ा वीर था, और बहुत अच्छा सेनापति था। वह कब चुपचाप बैठ सकता था। इसलिए उसने भारत के उन भिन्न-भिन्न भागों को, जो उसके राज्य में सम्मिलित नहीं थे, अपने राज्य मे मिलाने का प्रयत्न किया। गद्दी पर बैठने के कुछ ही दिन पीछे उसने गुजरात पर हमला कर दिया। राजा कर्ण हरा दिया गया, और उसकी रूपवती रानी कमलादेवी भी सुल्तान के हाथ लग गई। उसको अलाउद्दीन ने अपनी स्त्री बना लिया। इन दिनों देश पर मुगलों के भी आक्रमण हो रहे थे। वे अलाउद्दीन के समय में भी दल के दल आने लगे। परन्तु सुल्तान ने एक बड़ी सुसज्जित सेना द्वारा लड़ाइयों मे उनके दाँत खट्टे कर दिये, और उन्हे बुरी तरह परास्त किया।

इन विजयों से अलाउद्दीन का अभिमान बहुत बढ़ गया, यहाँ तक कि वह महान् सिकन्दर की बराबरी करने लगा। उसने भी सिकन्दर की तरह एक विशाल साम्राज्य बनाने की इच्छा प्रकट की। इस विषय मे उसने दिल्ली के कोतवाल अलाउल-मुल्क से सलाह ली। कोतवाल ने कहा कि, "बादशाहों का काम है कि वे देशों को जीते और मतमतान्तरों के झगड़ों मे न पड़े। भारत के बाहर के देशों को जीतने के पहले भारत के भिन्न-भिन्न स्वतंत्र राज्य, जैसे रणथम्भोर, मालवा, धार, चित्तौड़ आदि को जीतना आवश्यक है, जहाँ क़ाफ़िर (अर्थात् हिन्दू राजा) राज्य कर रहे है।" सुल्तान ने यह बात मान ली, और वह एक बड़ी सेना इकट्ठा करने मे लग गया।

पहले उसने रणथम्भोर को अपने राज्य में मिलाया. और फिर चित्तौड़ पर आक्रमण किया। रणथम्भोर का राजा इस समय हमीरदेव था। उस की शरण में सुल्तान का एक मुसलमान सरदार उस से डर कर भाग आया था। जब अलाउद्दीन ने उसे माँगा, तो हम्मीर ने साफ़ इन्कार कर दिया। अब तक प्रसिद्ध है कि 'तिरिया तेल हमीर हठ, चढ़े न दूजी बार।' बहुत दिनो के युद्ध के बाद सुल्तान ने उसे हरा दिया। चित्तौड़ के आक्रमण का एक कारण यह भी कहा जाता है कि सुल्तान ने वहाँ के महाराणा की स्त्री पद्मिनी के रूप की बड़ी प्रशंसा सुन रक्खी थी, और वह उसे लेना चाहता था। यह सँदेशा उसने महाराणा को भेजा, परन्तु एक स्वाभिमानी राजपूत ऐसी बात को कब स्वीकार कर सकता था? सुल्तान ने धोखा देकर महाराणा को गिरफ़्तार कर लिया, और फिर पद्मिनी से कहला भेजा कि यदि वह अब भी सुल्तान की रानी होना न स्वीकार करेगी तो उसका पति वध कर डाला जायगा और चित्तौड़ धूल से मिला दिया जायगा। रानी ने उत्तर दिया कि, "अच्छा, मुझे आपके 'हरम' मे रहना स्वीकार है, परन्तु मे अपनी ५०० बाँदियो सहित आऊँगी"। सुल्तान ने यह स्वीकार कर लिया। रानी ५०० डोलो सहित दिल्ली पहुँची। अलाउद्दीन ने भी बड़ी धूमधाम से स्वागत करने की तैयारियाँ की। समय पर इशारा पाते ही ५०० राजपूत जवान जो उन डोलियो मे पर्दे के भीतर छिपे थे, नंगी तलवारे लेकर निकल पड़े, और वे १,००० राजपूत वीर भी जो डोलियो को अपने कंधो पर लाये थे एक-दम मुसलमानी सेना पर टूट पड़े। उन्होने महाराणा को भी मुक्त कर लिया, और रानी तथा राणा को चित्तौड़ सकुशल ले आये। फिर क्या था! अलाउद्दीन के क्रोध का वारापार न रहा। उसने चित्तौड़ को विध्वंस करने की ठान ली,

और एक बार रानी को फिर लेने का संकल्प किया। वह एक बड़ी सेना ले कर चित्तौड़ पर चढ़ दौड़ा। राजपूत बड़ी वीरता से लड़े, परन्तु अन्त मे हार गये। राणा भी युद्ध में मारा गया। किन्तु जब मुसलमान किले के भीतर पद्मिनी की खोज मे पहुँचे, तो उन्हे केवल धधकती हुई आग की लपटे दिखाई दी, जिस मे पद्मिनी अन्य रानियो समेत जलने के लिए कूद पड़ी थी, जिससे कि वह शत्रुओ के हाथ मे पड़ने से बच जाय। राजपूतो मे ऐसी प्रथा, जिसे 'जौहर' कहते है, सदा से चली आई है। अलाउद्दीन हाथ मलता ही रह गया।

अलाउद्दीन ने फिर उत्तरी भारत के अन्य भागो को एक-एक कर के अपने अधीन कर लिया। इस के बाद उसने दक्षिण को विजय करने की ठानी, क्योकि वह भली भॉति जानता था कि दक्षिण के हिन्दू राजाओ मे मेल नही है और समय पड़ने पर वे एक दूसरे की सहायता न करेगे। इसके लिए उसने अपने सेनापति काफूर को भेजा। दस वर्ष मे मैसूर, वारंगल, देवगिरि आदि अनेक राज्य अलाउद्दीन के अधीन हो गये, और अतुल सम्पत्ति भी उसके हाथ लगी। इसी समय सुलतान राजा कर्ण की बेटी देवलदेवी को पकड़ कर दिल्ली ले आया, जिसका विवाह उसने अपने बेटे खिज़रखॉ के साथ कर दिया।

दक्षिण की विजयो के बाद सुल्तान का राज्य लगभग कुमारी अन्तरीप तक बढ़ गया था। इतने बड़े राज्य को सँभालना ज़रा टेढ़ी खीर थी। फिर अलाउद्दीन भी एक स्वेच्छाचारी शासक था। देश मे चारो ओर विद्रोह होने लगे। इन विद्रोहो को रोकने के लिए सुल्तान ने बड़े-बड़े नियम बनाये। उसने अमीरो और सरदारो की ख़ास तौर से ख़बर ली। उनकी बहुत सी जागीरे

ज़ब्त कर ली गईं। उन को आज्ञा दी गई कि वे एक दूसरे के साथ दावतें न खायँ, और परस्पर विवाह-सम्बन्ध न करें। वे एक दूसरे से मिल भी नहीं सकते थे। शराब पीने और जूआ खेलने की बिल्कुल मनादी कर दी गई, और शराब बेचने वाले शहर के बाहर निकाल दिये गये। उसने बहुत से गुप्तचर नियत किये, जो सरदारों तथा जनता की ज़रा-ज़रा सी बातों को उसके कानों तक पहुँचाते थे। इससे सरदार लोग और भी भयभीत हो गये। सुल्तान ने हिन्दुओं के साथ बड़ी कठोरता का बर्ताव किया। उनको जीवन की आवश्यकीय वस्तुओं को भी रखने की आज्ञा न थी। उन्हें धरती की आधी आमदनी कर के रूप में दे देनी पड़ती थी। हिन्दुओं के घरों में जितना धन होता था, वह सब हर लिया जाता था। परन्तु ये अत्याचार शायद दोआब के हिन्दुओं पर ही हुए।

इतने बड़े साम्राज्य को वश में रखने के लिए और मुग़लों के आक्रमणों को रोकने के लिए वृहद् सेना की आवश्यकता थी, और सेना के लिए व्यय की आवश्यकता मालूम हुई। इस-लिए उसने सैनिकों के वेतन कम कर दिये, और साथ ही साथ वस्तुओं का मूल्य भी घटा दिया। चीज़ों के भाव इस प्रकार नियत किये गये:—

गेहूँ	१ मन	७½ जीतल
चना	,,	५ ,,
चावल	,,	५ ,,
उर्द	,,	५ ,,
जौ	,,	४ ,,
घी	२½ सेर	१ जीतल

गुड़	१ सेर	$\frac{1}{3}$ जीतल
नमक	२$\frac{1}{2}$ मन	५ ,,

एक जीतल का मूल्य आजकल के एक पैसे से कुछ ही अधिक था, और १ मन की तोल आजकल के १४ सेर के बराबर थी। ऊपर की तालिका से तुम समझ सकते हो कि उस समय भारत मे चीजो का भाव कितना सस्ता था। इन खाद्य पदार्थों के अतिरिक्त ढोर, कपड़ा, दास आदि के दाम भी नियत कर दिये गये थे। सरकारी कर्मचारी बाजार का निरीक्षण करते थे। यदि कोई दूकानदार कम तौलता था, तो जितनी कमी होती थी उतना ही मांस तोल कर उस के शरीर मे से काट लिया जाता था।

अलाउद्दीन एक निर्दयी और स्वच्छन्द सुल्तान था। परन्तु वह शानदार शासक था, और कुशल सेनापति भी था। उसने स्वयं अपनी नीति एक बार इन शब्दो मे वर्णन की है—"मै नहीं जानता कि कोई बात न्यायपूर्वक है या नही। मै तो जो समझता हूँ कि यह बात राज्य के लिए हितकर होगी, या आवश्यकता को पूरा करने के लिए ठीक होगी, उसी के लिए मै आज्ञा दे देता हूँ।" सुल्तान स्वयं पढ़ा लिखा तो न था, परन्तु विद्वानो का आदर करता था और विद्वानो को अपने दरबार मे आश्रय देता था। था तो वह कट्टर मुसलमान, परन्तु काजियो और मुल्लाओ को शासन मे हस्तक्षेप न करने देता था। इस मे सन्देह नही कि अलाउद्दीन की गिनती भारत के बलशाली शासको मे सदा की जायगी।

बाईस वर्ष राज्य करने के बाद अलाउद्दीन सन् १३१६ मे इस संसार से कूच कर गया। उस के मरते ही उसका राज्य छिन्न-भिन्न हो गया।

प्रश्न

१ देवगिरि को अलाउद्दीन ने कैसे जीता ? उसे लूट में क्या हाथ लगा ?
२ अलाउद्दीन ने जलालुद्दीन को कैसे मारा ?
३ अपने चचा की हत्या को भुलाने के लिये उसने क्या उपाय किया ?
४ गुजरात का राजा कौन था ? उस को हरा कर अलाउद्दीन ने क्या पाया ?
५ अलाउद्दीन का हौसला महान् सिकन्दर की बराबरी करने का कैसे हुआ ?
६ दिल्ली के कोतवाल अलाउलमुल्क ने उसे क्या सलाह दी थी ?
७ महाराणा को छुड़ाने के लिये पद्मिनी ने क्या चाल चली थी ?
८ 'जौहर' से तुम क्या समझते हो ? यह क्यों किया जाता था ?
९ काफ़ूर कौन था ? उसने अलाउद्दीन के लिए कौन-कौन राज्य जीते ?
१० अलाउद्दीन ने इतने बड़े राज्य को सँभालने का क्या प्रबन्ध किया ?
११ उसने वस्तुओं के भाव क्यों नियत किये ?
१२ उस समय जीतल और मन के क्या मूल्य थे ?
१३ अलाउद्दीन ने कम तोलने की क्या सज़ा नियत की थी ? इसका क्या फल हुआ ?
१४ अलाउद्दीन का चरित्र वर्णन करो।

अध्याय १३

बाबर

(साम्राज्य स्थापित करने वाला एक बादशाह)

बालको ! इस पाठ मे हम तुम्हे एक ऐसे वीर पुरुष का जीवन वृत्तान्त बतलायेगे, जिसने केवल अपने बल और योग्यता से एक छोटे से राज्य का स्वामी होते हुए दूसरे देश मे जाकर एक विशाल साम्राज्य स्थापित कर लिया। इस का नाम बाबर था, और इसी ने भारत मे मुग़ल सामाज्य की नींव डाली।

बाबर

जब बाबर के पिता की मृत्यु हुई, तो उस की अवस्था केवल ११ वर्ष की थी। उस समय वह मध्य एशिया मे एक छोटे से राज्य 'फरगना' का स्वामी था। इस समय बाबर को बड़ी कठिनाइयो का सामना करना पड़ा। उसे अपने सम्बन्धियो से अनेक लड़ाइयॉ लड़नी पड़ी। दो बार उसे अपनी मातृभूमि छोड़नी पड़ी और अनेक कष्ट झेलने पड़े। अनेक बार उसे अपने प्राणो के लिए भागना पड़ा, और कई बार वह बाल-बाल बचा। परन्तु बाबर कब चैन लेने वाला था। उस की नसो मे तो चंगेज़ ख़ॉ और तैमूर नामक दो भयानक वीरो का रक्त दौड़ रहा था,

जिन के डर के मारे एशिया के लोगों के कलेजे दहल उठे थे। बाबर उन्हीं की सन्तान में होकर और बचपन से ही कठिनाइयाँ झेल कर बड़ा वीर और साहसी हो गया था।

अपने चचा की मृत्यु के पीछे बाबर के हाथ जब काबुल आ गया, तो उसने भारत पर आक्रमण करने की ठानी। उसने भारत पर पाँच आक्रमण किये, और अन्तिम आक्रमण ने उसे दिल्ली का बादशाह बना दिया। उस का यह आक्रमण सन् १५२६ ई० में हुआ। इस समय भारत की राजनैतिक दशा बड़ी डाँवाडोल थी। सारे देश में अनेक छोटे-छोटे स्वतंत्र राजा राज्य करते थे, जो एक दूसरे से बहुत द्वेष रखते थे। उत्तरी भारत मे अधिकांश मुसलमान शासक थे। दिल्ली का सुल्तान इस समय इब्राहीम लोदी था। बाबर को पंजाब के शासक दौलतख़ाँ लोदी ने आक्रमण के लिए निमन्त्रण दिया। बाबर अच्छा अवसर देख कर १२,००० मनुष्य और तोपख़ाना ले कर दिल्ली के निकट पानीपत के मैदान में आ धमका। इब्राहीम लोदी ने भी बहुत बड़ी सेना इकट्ठी की। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इब्राहीम की सेना में १ लाख से कम मनुष्य न थे। दोनों दलों मे घमासान युद्ध हुआ। थोड़ी ही देर में भारतीय सेना के पैर उखड़ गये। इब्राहीम के १५,००० मनुष्य काम आये। बाबर की सेना छोटी थी परन्तु सुव्यवस्थित थी, और उस के पास तोपख़ाना भी था। बाबर स्वयं भी बहुत अच्छा सेनापति था। इसलिए विजय मुग़लो के हाथ रही। सुल्तानों के राज्य का भारत मे अन्त हो गया, और मुग़ल बादशाहों का दौर-दौरा आरम्भ हो गया।

दिल्ली का राज्य ले लेने के पीछे अभी दो बड़े वैरी और बचे थे, जिनका सामना करना बाकी था—एक तो वीर राजपूत, जो युद्ध-कौशल और स्वतंत्रता-प्रेम के लिए भारत मे सदा से प्रसिद्ध रहे हैं; और दूसरे अफ़ग़ान, जो अभी बंगाल मे प्रमुख थे, और जो भारत मे ३०० वर्ष से अधिक काल तक राज्य कर चुके थे। पहली मुठभेड़ राजपूतो से हुई। इस समय मेवाड़ का शासक राणा संग्रामसिह था। यह इतिहास मे राना साँगा के नाम से प्रसिद्ध है। यह अपनी वीरता के लिए बड़ी ख्याति पा चुका था। इसने अपने जीवन-काल मे अनेक युद्ध लड़े थे, और बड़े-बड़े वीरों को धराशायी किया था। उस के शरीर पर ८० घावो के चिह्न थे, और युद्ध मे उस की एक टाँग, एक भुजा और एक आँख जाती रही थी। राना ने समस्त राजपूताना के राजाओ और दो भारतीय मुसलमान शासको की सेनाएँ एकत्रित की, और आगे पैर बढ़ाया। उधर से बाबर बढ़ा। दोनो ओर की सेनाएँ फ़तेहपुर सीकरी के निकट कनवाह के मैदान मे इकट्ठी हुईं। इतनी बड़ी सेना को देख कर बाबर से छक्के छूट गये, और उस के सैनिको की हिम्मत टूट गई। उसी समय उस के एक ज्योतिषी ने यह भविष्य वाणी की कि बाबर का इस युद्ध में जीतना कठिन है। परन्तु बाबर था बड़ा दिलेर आदमी। उसने एक दम अपने शराब के बर्तन तोड़ दिये, और सौगन्द खाई कि मै आज से पीछे कभी शराब न पीऊँगा। फिर एक ओजस्वी भाषण द्वारा उसने अपने सैनिको के हृदयो को जोश से भर दिया, और ईश्वर से विजय के लिए प्रार्थना करता हुआ सेना को वैरी पर आक्रमण करने के लिए आज्ञा दे दी। राजपूत बड़ी वीरता से लड़े, परन्तु अन्त मे उन की पराजय हुई। राजपूतो की भारी क्षति हुई। दो वर्ष पीछे बाबर ने अफ़ग़ानो को भी हरा

कर तितर-बितर कर दिया। इस प्रकार बाबर अब सारे उत्तरी भारत का स्वामी हो गया।

मदिरा पीने से बाबर का स्वास्थ्य बहुत ख़राब हो चला था। वह भारत मे चार वर्ष ही राज्य करने पाया था कि अचानक उस को मृत्यु ने आ घेरा। उस की मृत्यु के सम्बन्ध मे एक विचित्र कथा कही जाती है। अकस्मात् उस का प्यारा पुत्र हुमायूँ बीमार पड़ गया। वह इतना बीमार पड़ा कि उस के जीवन की कोई आशा न रही। बाबर बहुत घबराया। उसके एक साथी ने सलाह दी कि, "यदि तुम अपनी सब से प्यारी वस्तु को देने के लिए तैयार हो जाओ और ईश्वर से प्रार्थना करो, तो सम्भव है कि तुम्हारे पुत्र के प्राण बच जायँ।" बाबर ने कहा, "मैं सब से प्यारी वस्तु अपने प्राण समझता हूँ, और यही अपने पुत्र के प्राणो की रक्षा के लिए अर्पण करना चाहता हूँ।" उसने ईश्वर से प्रार्थना की, और कहा जाता है उसकी प्रार्थना सुन ली गई। उसी दिन से हुमायूँ धीरे-धीरे अच्छा होने लगा और बाबर बीमार पड़ता गया, यहाँ तक कि वह मर गया।

बाबर बड़ा ही वीर और साहसी पुरुष था। 'बाबर' शब्द का अर्थ है शेर, और बाबर वास्तव में एक सिंह के समान ही बलवान था। वह दो मनुष्यों को बगल मे दबा कर ऊंची दीवार पर दौड़ जाता था। वह पानी मे तैरने का बड़ा प्रेमी था। मार्ग मे उसे जितनी नदियाँ मिलीं, सभी उसने तैर कर पार कीं। उसे घोड़े की सवारी का भी बड़ा शौक था। दिन भर मे ८० मील घोड़े पर सवार हो कर चले जाना उसके लिए साधारण सी बात थी। वह तीरअन्दाज़ भी बहुत अच्छा था।

यद्यपि उसे कभी-कभी बहुत क्रोध आ जाता था, परन्तु साधारणतया वह बड़े कोमल स्वभाव का था। वह बड़ा उदार-चित्त था, विश्वासघात कभी नहीं करता था। जिस बात को एक बार ठान लेता था उस को पूरा कर के ही छोड़ता था। राजपूतो से लड़ते समय उसने शराब पीना एक-दम छोड़ दिया। इस से पता लगता है कि वह दृढ़-प्रतिज्ञ भी था।

परन्तु याद रहे बाबर निरा एक वीर साहसी योद्धा ही न था। उसमे विशेषता यह थी कि शरीर की पुष्टता के साथ-साथ उसका मस्तिष्क भी उच्च था। वह साहित्य-प्रेमी था, और कवि भी। फ़ारसी और अपनी मातृभाषा तुर्की मे वह बहुत अच्छी कविता करता था। उसका लेख भी बहुत अच्छा था। रण-क्षेत्र मे और आपत्तियो के समय भी वह बहुत ऊँचे दर्जे के शेर और ग़ज़ल बना डालता था। सचमुच ही उस की बुद्धि बड़ी विलक्षण थी। उसने अपना जीवन-चरित्र स्वयं अपनी ही लेखनी से लिखा है। उस मे उस ने अपने गुणो और अवगुणो दोनो की ही भली भाँति आलोचना की है। बाबर के इस आत्मचरित्र का स्थान साहित्य मे बहुत ऊँचा है। उस मे उस ने भारतवर्ष के विषय मे अच्छी सम्मति नहीं दी है। इसका कारण कदाचित् यह था कि वह इस देश मे बहुत थोड़े दिनों तक रहा। यदि वह यहाँ अधिक काल तक रहता तो ऐसा कदापि न लिखता।

छोटी सी अवस्था मे एक छोटे से राज्य का स्वामी हो कर और फिर दूसरे देश मे जा कर एक विशाल साम्राज्य स्थापित कर लेना बाबर के लिए क्या कुछ कम गौरव की बात थी ? बाबर का सारा जीवन कठिनाइयो और युद्धो में ही व्यतीत हुआ। परन्तु इतना सब होते हुए भी उसमे साहित्य-प्रेम बहुत अधिक

मात्रा में था। यह एक बहुत बड़ी बात थी। बाबर की गिनती मध्य एशिया के बड़े-बड़े शासकों में सदा की जायगी।

प्रश्न

१ पिता की मृत्यु के समय बाबर की क्या अवस्था थी? उस समय वह कहाँ था?

२ बाबर का बचपन कैसे व्यतीत हुआ?

३ उसने भारत पर अन्तिम आक्रमण कब किया? उसको किसने बुलाया था?

४ पानीपत की लड़ाई के बारे में तुम क्या जानते हो?

५ राणा साँगा कौन था? उसकी वीरता के विषय में क्या जानते हो?

६ कनवाह की लड़ाई मे बाबर ने अपने सैनिकों को कैसे उत्साह दिलाया?

७ इस युद्ध में राजपूत क्यों हारे?

८ बाबर ने भारत में कितने दिन राज्य किया?

९ बाबर की मृत्यु कैसे हुई?

१० बाबर के कुछ गुणो का वर्णन करो।

अध्याय १४.

अकबर

(महान् मुगल)

बालको ! तुम मे शायद ही कोई ऐसा होगा, जिसने अकबर बादशाह का नाम न सुना हो। अकबर और बीरबल के लतीफे पढ़े-लिखे और कुपढ़ क्या सभी के मुँह से सुनाई देते है। अकबर का राज्य तो बहुत बड़ा था ही, परन्तु यह पहला मुसलमान बादशाह था, जिसने हिन्दू और मुसलमान दोनो को एक दृष्टि से देखा और भारत मे इन दोनो बड़ी जातियो को मिला कर एक जाति बनाने का प्रयत्न किया। उस का शासन भी बहुत उत्तम था। इन्ही कारणो से इतिहासकर अकबर को 'अकबर महान्' कहा करते है।

अकबर

अकबर बाबर बादशाह का पोता था। वह सिंध के रेगिस्तान मे पैदा हुआ था, जब कि उस का पिता हुमायूँ अपनी प्राण-रक्षा के लिए मारा मारा फिर रहा था। पुत्र के जन्म के समय हुमायूँ के पास इतना भी न था कि ख़ुशी मे कुछ खर्च कर सके। इसलिए कस्तूरी का एक नाफ़ा तोडा गया और सरदारो को बाँटा

गया। उसने प्रार्थना की कि जिस भाँति इस कस्तूरी की महँक यहाँ फैल रही है उसी तरह इस नवजात शिशु का यश सारे संसार में फैले। हुमायूँ की यह भावना अन्त में सच्ची निकली। अकबर का बचपन बड़ी कठिनाइयों में व्यतीत हुआ, उसके पढ़ने-लिखने का भी प्रबन्ध ठीक न रहा। एक बार जब वह ४ वर्ष का था, हुमायूँ को अपने भाई कामराँ से लड़ना पड़ा। कामराँ ने उस समय बालक अकबर को क़िले की दीवार पर बैठा दिया, जिस से कि हुमायूँ अपनी सेना वापस ले जाय। पिता की सेना बराबर गोलाबारी करती रही, परन्तु भाग्यशाली अकबर बच गया। अपने पिता हुमायूँ के मरने पर अकबर गद्दी पर बैठा। इस समय इसकी अवस्था केवल १३ वर्ष की थी। सिंहासन पर बैठते ही उसको एक बड़ा युद्ध लड़ना पड़ा। हेमू एक विशाल सेना ले कर दिल्ली पर चढ़ दौड़ा। पानीपत के मैदान में घमासान युद्ध हुआ। यह वही रण-क्षेत्र था, जहाँ बाबर इब्राहीम से लड़ा था। इस मैदान पर भारत के भाग्य का तीन बार निपटारा हो चुका है। हेमू की आँख में अकबर का तीर लगा, और उस की सेना भाग निकली। हेमू पकड़ा गया, और अकबर के सामने लाया गया। अकबर के संरक्षक व गुरु बैरमखाँ ने उसके हाथ में तलवार दे कर हेमू को मारने के लिए संकेत किया, परन्तु दयालु सम्राट् ने ऐसा करने से मना कर दिया।

बालक अकबर के काम आरम्भ से ही युवा मनुष्यों के से थे। पहला काम जो इसने किया वह यह था कि बैरमख़ाँ से राज्य की बागडोर छीन कर अपने हाथ में ले ली। बैरमख़ाँ को अकस्मात् आज्ञा दे दी गई कि वह यात्रा के लिए मक्का जा सकता है। बैरमख़ाँ अपने स्वामी को भलीभाँति पहिचानता था।

पहले तो वह मान गया, परन्तु कुछ मित्रो के वहकाने मे आ कर विद्रोह कर बैठा । अकबर ने उसे तुरन्त हरा दिया और उदारतापूर्वक क्षमा कर दिया ।

अकबर हिन्दू भेस में

अकबर के शासन मे उसकी राजपूत-नीति सब से अधिक प्रसिद्ध है। अकबर ने भली भाँति समझ लिया कि यदि उसको और उस की सन्तान को भारत मे चिरस्थायी रूप से राज्य करना है, तो आवश्यक है कि वह हिन्दुओ से मेल करे और उन्हे अपनावे। फिर हिन्दुओ मे जो जाति लड़ाकू और अधिक स्वतन्त्रताप्रिय थी वह राजपूत जाति थी । इसलिए उसने राजपूतो से मेल करने की ठानी। इसकी उसने नई युक्ति निकाली। उसने राजपूत राजाओ की बेटियो के साथ विवाह करके अपने 'हरम' मे लेना आरम्भ कर दिया। सब से पहले आमेर के राजा भारमल की बेटी से उसने विवाह किया। इसके बदले उसने भारमल के बेटे भगवानसिह और पोते मानसिह को ऊँचे पदों पर नियुक्त कर

दिया। अन्य कई राजपूत राजाओं ने भी अपनी बहिन-बेटियाँ अकबर व उसके लड़के सलीम को व्याह दी।

परन्तु मेवाड़ के राणा उदयसिंह ने, जो राणा साँगा का पुत्र था, ऐसा करने से इन्कार किया। अकबर ने इसकी राजधानी चित्तौड़ पर चढ़ाई कर दी। राणा स्वयं तो चल दिया, परन्तु अपने सेनाध्यक्ष जयमल को क़िले की रक्षा के हेतु छोड़ गया। जयमल को स्वयं अकबर ने गोली से मार दिया। राजपूतो में भगदड़ मच गई, और चित्तौड़ मुसलमानो के हाथ आ गया। राणा उदयसिंह के पुत्र राणा प्रतापसिंह ने फिर अकबर से लोहा लिया, राणा प्रताप के साथ जो युद्ध हुआ, उसका वर्णन तुमको किसी अगले पाठ मे बताया जायगा। राणा प्रताप बड़ी वीरता से लड़ा, परन्तु अन्त में हार गया। किन्तु फिर कुछ काल पीछे उसने धीरे-धीरे अपने कई क़िले मुसलमानो से छीन लिए।

राजपूताने को वश मे करने के पश्चात् अकबर ने गुजरात, बंगाल, काबुल, कश्मीर, सिंध आदि प्रदेशो को अपने अधीन कर लिया। मालवा व गोण्डवाना पहले ही से अधिकार मे आचुके थे। अब अकबर ने दक्षिण की ओर ध्यान दिया। परन्तु यहाँ उसको वैसी सफलता नहीं मिली। अहमदनगर, बीजापुर, ख़ानदेश आदि कुछ मुसलमानी स्वतन्त्र राज्य मुग़ल राज्य में मिला लिये गये। अहमदनगर के विजय करने में वहाँ की मुसलमान रानी चाँदबीबी ने बड़ी वीरता दिखाई। प्रसिद्ध है जब गोलियाँ समाप्त होगईं, तो उस ने बन्दूको मे अपने ज़ेवर भर-भर कर चलाये। अन्त मे अकबर ने धोखा देकर उसे हरा दिया।

अकबर की राजपूत-नीति का गहरा प्रभाव पड़ा। राजपूत, जो अब तक मुसलमानों के कट्टर शत्रु थे, उसके परम मित्र

हो गये। उन्होने साम्राज्य की रक्षा मे जहाँ पसीना बहाने की आवश्यकता थी खून बहाया। अकबर भी हिन्दू-मुसलमानो को एक निगाह से देखने लगा। कई हिन्दू ऊंचे-ऊँचे पदो पर नियुक्त किये गये। हिन्दू प्रजा से मुसलमान राजा जो जज़िया नामक कर लेते थे वह माफ कर दिया गया, और यात्रियो पर से भी कर उठा लिया गया। सती, बाल-विवाह आदि कुप्रथाओ को रोकने का सम्राट् ने भरसक प्रयत्न किया। विधवा-विवाह भी जायज़ कर दिया गया। पशुओ का बलिदान बन्द कर दिया गया। रनिवास मे हिन्दू रानियो के कारण अकबर के धार्मिक विचारो पर बहुत प्रभाव पड़ा। उसका मन इस्लाम की ओर से हट गया।

अकबर ने फतहपुर सीकरी मे बडी सुन्दर इमारते बनवाई। इन मे से एक का नाम इबादतखाना अर्थात् पूजा-घर था। यहीं अकबर के धार्मिक विचारो का विकास हुआ. जिनका वर्णन हम अभी ऊपर कर आये है। इसकी कहानी बड़ी कौतूहल वर्द्धक है। सीकरी मे प्रत्येक धर्म—ब्राह्मण, जैन, ईसाई, यहूदी, पारसी, शिया, सुन्नी, सूफी आदि के—पण्डित बुलाये जाते थे, और अकबर स्वयं सभापति होकर उनसे वाद-विवाद करने के लिए कहता था। बहस करते-करते जब वे आपस मे लड़ने लगते, तो सम्राट् ही स्वयं उनका बीच-बिचाव करता। अकबर ने एक नया धर्म भी स्थापित करना चाहा, परन्तु इसमे उसको सफलता न हुई।

अकबर स्वयं पढ़ा लिखा न था; वह अपने हस्ताक्षर भी न कर सकता था। परन्तु उसे विद्वानो की संगति से बड़ा प्रेम था।
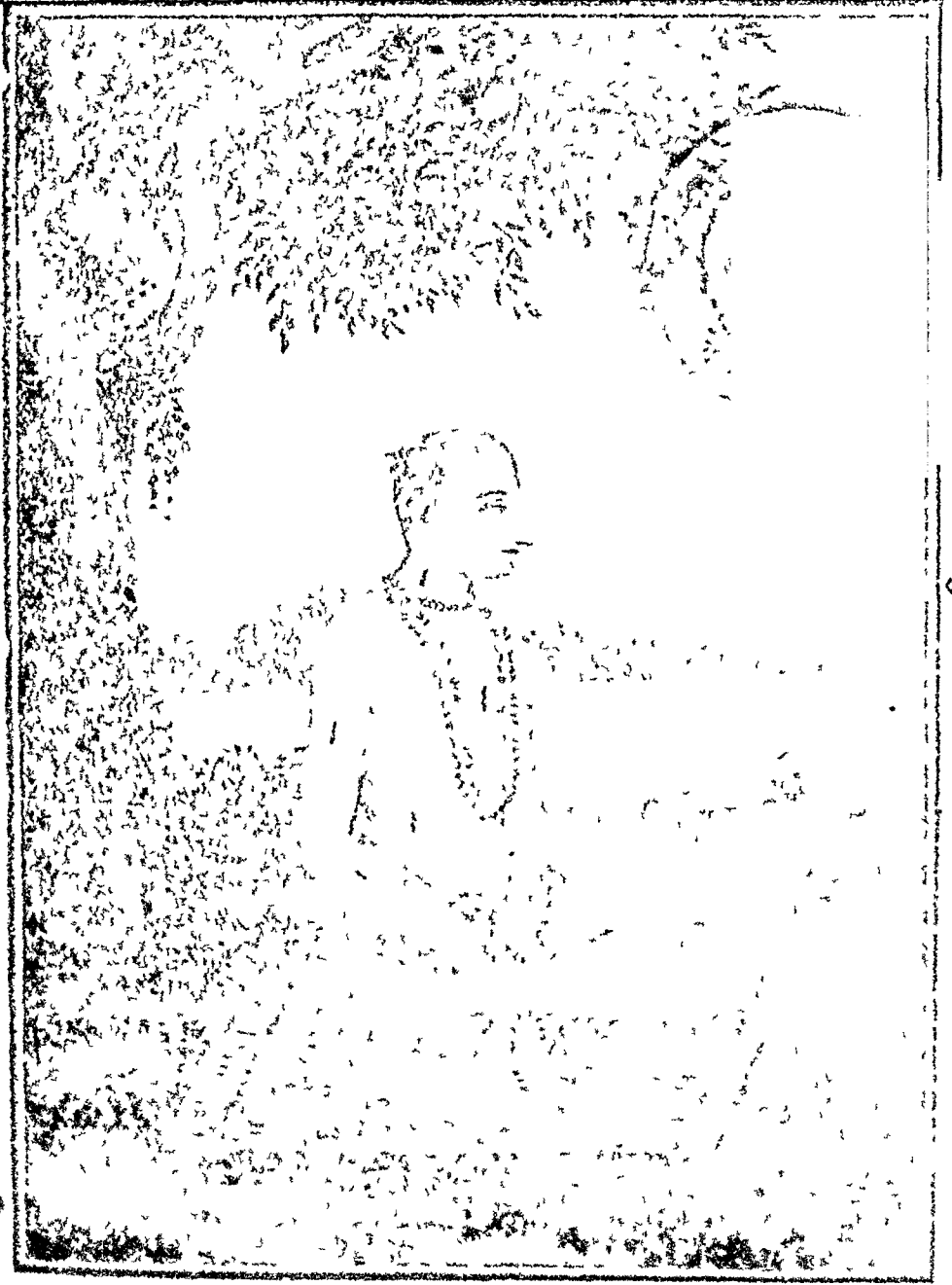
गोस्वामी तुलसीदास जी

उसके दरबार मे अनेक विद्वान् रहते थे। शेख़ मुबारक, अबुल-फ़ज़ल, बदाउॅनी, रहीम आदि उसके यहाँ आश्रय पाते थे। इनमे से कुछ का वर्णन अगले पाठ मे किया जायगा। अकबर के समय मे हिन्दी साहित्य की बहुत उन्नति हुई। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि और रामचरित मानस के लेखक गोस्वामी तुलसीदास उसी के समय मे हुए है। कविवर सूरदास जी भी इसी समय मे हुए है। हिन्दी के कई मुसलमान कवि भी इस काल मे हुए। अकबर स्वयं हिन्ही की कविता करता था विद्वानो के सत्संग के कारण अकबर का ज्ञान बहुत बढ़ गया था। वह ऑखो द्वारा पढ़ा-लिखा न हो कर कानो पर द्वारा पढ़ा हुआ था। विद्या-रसिको के अतिरिक्त अकबर के दरबार मे अनेक चित्रकार, गवैये, शिल्प-कार आदि भी मौजूद थे।

अकबर "औसत क़द का परन्तु कुछ लम्बा था। उसका रंग गेहुँआ था। उसकी ऑखे व भोहे काली थी। शरीर हृष्ट-पुष्ट, छाती चौड़ी, और भुजाएॅ लम्बी थीं। उसका स्वर ऊ चा तथा मधुर था।" चेहरे से तेज चमकता था। उसकी दिनचर्या व रहन-सहन सीधा-सादा था। दिन मे एक ही बार भोजन करता था, और शुद्ध गंगाजल पीता था। कभी-कभी शराब व अफ़ीम का भी उपयोग कर लेता था। मॉस बहुत कम खाता था। रात-दिन मे मुश्किल से ३-४ घण्टे सोता था। शरीर मे बहुत बल था। वह कठिन से कठिन परिश्रम करने से भी नही घबराता था। घोड़े का सवारी और शिकार का उसे बड़ा शौक था। पोलो का खेल भी उसे बहुत अच्छा मालूम होता था। एक बार उसने आगरे से अजमेर (जो ३१४ मील दूर है) की पैदल यात्रा १० दिन में समाप्त कर दी! एक बार सूरत मे बलवा

हुआ। समाचार पाते ही अकबर ने अत्यन्त शीघ्रता से सारी तैयारियाँ कर डाली। एक सेना आगे भेज दी, और स्वयं ऊँटनी पर सवार हो कर ग्यारहवें दिन सूरत जा धमका! विद्रोहियों को किसी प्रकार विश्वास न हुआ कि अकबर आ पहुँचा है, क्योंकि वहाँ पहुँचने में समय ही इतना कम लगा था। निशाना लगाने में भी अकबर बड़ा कुशल था। उसने अपनी बुद्धि से कई नई छोटी छोटी मशीनों का भी आविष्कार किया था।
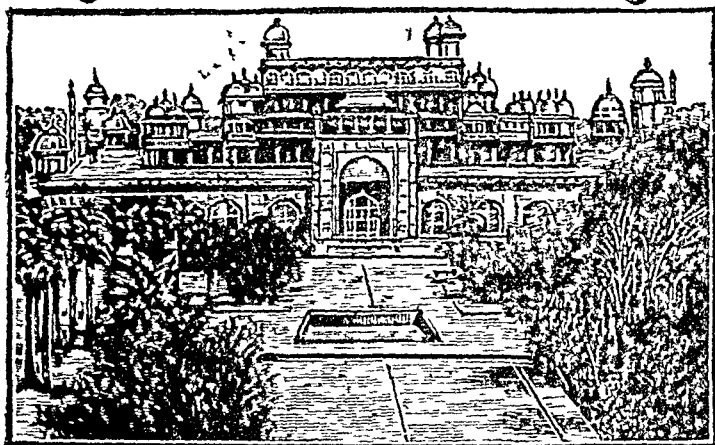
सिकन्दरा (आगरा) में अकबर की क़ब्र

पशुओं की कुश्ती देखने का वह बड़ा शौक़ीन था। अकबर की असाधारण बुद्धि, साहस और धैर्य का परिचय तो केवल इसी बात से मिलता है कि उसने अपने पिता से एक छोटा सा संकट-मय राज्य पाकर इतना विशाल साम्राज्य स्थापित कर लिया था।

इस मे कोई संदेह नहीं कि अकबर का स्थान भारत के मुसलमान शासको मे सब से ऊँचा है। यदि उसके उत्तरा-धिकारी भी उसकी नीति का पालन करते होते, तो मुग़ल राज्य

कदापि छिन्न-भिन्न न होता और भारत मे एक सुदृढ़ राष्ट्र बन जाता। पचास वर्ष राज्य के पीछे यह महान् सम्राट् परलोक सिधारा।

प्रश्न

१ अकबर को इतिहास मे 'महान्' क्यो कहते हैं?
२ गद्दी पर बैठने के समय अकबर की अवस्था कितनी थी?
३ हेमू को अकबर ने क्यो नही मारा?
४ बैरमखॉ से अकबर ने किस प्रकार राज्य की बागडोर अपने हाथ मे ली?
५ राजपूतो के प्रति अकबर की क्या नीति थी? इसका क्या फल हुआ?
६ अकबर ने चितौड किस प्रकार लिया?
७ अकबर ने कौन कौन से देश जीते?
८ चॉदबीबी अकबर से किस तरह हारी?
९ अकबर ने जज़िया क्यो माफ़ कर दिया था?
१० अकबर के धार्मिक विचारो का विकास कहॉ और कैसे हुआ?
११ अकबर के दरबार के कुछ विद्वानो के नाम बताओ।
१२ अकबर के समय मे हिन्दी के कौन कौन से प्रसिद्ध कवि हुए?
१३ अकबर का चरित्र वर्णन करो।
१४ अन्य मुसलमान शासको से अकबर किस प्रकार भिन्न था?
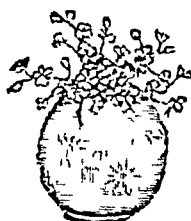
अध्याय १५

अकबर की सभा के रत्न

[कुछ प्रसिद्ध मनुष्य]

तुमको पिछले पाठ मे बतलाया जा चुका है कि यद्यपि अकबर स्वयं पढ़ा-लिखा न था, परन्तु विद्वानो की संगति का बड़ा प्रेमी था, और उनसे किताबें पढ़वा कर सुना करता था। उसे प्रत्येक बात के जानने की सदा उत्कट अभिलाषा रहती थी, और उसका ज्ञान बहुत बढ़ा-चढ़ा था। वह विद्वानो तथा अन्य प्रतिभाशाली मनुष्यो को अपने दरबार मे आश्रय देता था। इन्हीं मे से कुछ का वर्णन हम इस पाठ मे करेगे।

अबुलफ़ज़्ल। अबुलफ़ज़्ल के पिता का नाम शेख़ मुबारक था। मुबारक आगरे का एक मौलवी था। इसके दो लड़के थे, अबुलफ़ैज़ी और अबुलफ़ज़्ल। फ़ैज़ी बड़ा था। शेख़ मुबारक सूफी मत का मानने वाला था, और इसने अपने पुत्रो को भी वैसी ही शिक्षा दी थी। दोनो भाइयो के प्रभाव मे ही आ कर अकबर के धार्मिक विचारो मे इतना परिवर्तन हो गया था, और उसकी श्रद्धा इस्लाम-धर्म पर से उठ गई थी। अबुल-फ़ज़्ल बड़े उदार विचारो का था। वह सदा सत्य की खोज मे रहा, और पक्षपात से घृणा करता रहा।

अबुलफ़ज़्ल मे बचपन से ही बड़े होने के लक्षण थे। जब वह सवा वर्ष का ही था खूब बाते करता था। १५ वर्ष की अवस्था मे उसे कई पुस्तके ज़बानी याद होगई थी। अबुलफ़ज़्ल

अपने समय का भारी विद्वान् था। उसकी विद्वत्ता केवल एक ही बात से मालूम हो जाती है। एक बार एक हस्तलिखित पुस्तक के सारे पृष्ठों के नीचे के आधे भाग बिल्कुल नष्ट हो गये थे। अबुलफ़ज़ल ने प्रत्येक कटे हुए पृष्ठ को इस प्रकार लिख कर पूरा कर दिया मानो उस पुस्तक का कुछ भी न बिगड़ा हो। वह फ़ारसी व संस्कृत दोनों का पण्डित था। अकबर के पुस्तकालय में २४,००० हस्तलिखित ग्रन्थ थे। इन के एक स्थान पर इकट्ठा होने और लिखे जाने का श्रेय प्रायः चार मनुष्यों को ही था—अकबर, अबुलफ़ज़ल, अबुलफ़ैज़ी और बदाउँनी। अबुलफ़ज़ल द्वारा लिखी गई 'अकबर नामा' व 'आईन-अकबरी' बहुत प्रसिद्ध है। इन पुस्तकों में उसने अकबर के राज्य और उसकी शासन-प्रणाली का बड़ा उत्तम और सविस्तार वर्णन किया है। अबुलफ़ज़ल बहुत मिलनसार था, और कभी कोई कटु शब्द अपनी जीभ पर न लाता था। उसका स्वास्थ्य बहुत अच्छा था। उसकी ख़ुराक भी बड़ी ज़बरदस्त थी। दिन-रात में २२ सेर भोजन करता था। स्वादिष्ट भोजन न मिलने पर भूखा ही रह जाता था। अबुलफ़ज़ल को अकबर के पुत्र सलीम ने मरवा डाला था। इस पर अकबर को अत्यन्त दुःख हुआ। इस समाचार के पाने पर उसके मुँह से ये शब्द निकले थे, "यदि सलीम गद्दी पर बैठना चाहता था तो उसे मुझे मारना चाहिए था। अबुलफ़ज़ल को मारने से उसे क्या हाथ लगा?"

अबुलफ़ैज़ी—जैसा ऊपर कहा जा चुका है अबुलफ़ज़ल और फ़ैज़ी भाई-भाई थे। जब अकबर ने फ़ैज़ी के गुणों की प्रशंसा सुनी, तो उसने तुरन्त उस को बुलवा भेजा। लोगों को यही ख़्याल हुआ कि बादशाह उसे किसी कारण सज़ा देना चाहता है।

परन्तु जब फ़ैज़ी दरबार मे पहुँचा और यह मालूम हुआ कि अकबर ने उस की कविता की प्रशंसा सुन कर बुलाया है और उसे अपना कृपा-पात्र बनाना चाहता है, तब उस के और उस के पिता के जी मे जी आया। फ़ैज़ी भी बड़े उदार विचारो का था, और अकबर के परम मित्रों मे से एक था। दोनो भाइयो ने अकबर के विचारो पर, और इसलिए उस की नीति पर बड़ा गहरा प्रभाव डाला था। फ़ैज़ी भी बड़ा विद्वान् था और उत्तम कवि था। उसके विचार बड़े उदार थे और वह भी सभी धर्मों को बड़े आदर की दृष्टि से देखता था। फ़ैज़ी एक अच्छा वैद्य था और ज्योतिषी भी।

टोडरमल—टोडरमल का जन्म एक खत्री कुल में लहरपुर (ज़िला सीतापुर) मे हुआ था। वह बड़ा योग्य पुरुष था, और अच्छा योद्धा भी था। उसे लालच छू तक नही गया था। वह अपने धर्म का बड़ा पक्का था। शेरशाह सूर ने उसकी योग्यता के ही कारण उसे अपना मंत्री बनाया था। जब अकबर ने राज्य-काज करना आरम्भ किया, तो उसने भी टोडरमल को अपने यहाँ नौकर रख लिया, और उसे अर्थ सचिव बना दिया।

टोडरमल ने अर्थ-मन्त्री के पद पर रह कर साम्राज्य की बहुत सेवा की। उस का कार्य बड़े ऊँचे दर्जे का था और सर्वथा प्रशंसनीय था। उसने सारी भूमि की भली भाँति जाँच-पड़ताल की। पहले खेत नापे गये। फिर उनकी उपज निश्चित की गई। १० वर्ष की उपज के आधार पर एक वर्ष की औसत उपज निकाली गई, और इस उपज के अनुसार भूमि कर लगाया गया।

राजा टोडरमल ने एक और महत्त्वपूर्ण कार्य किया। वह यह था कि उसने अपने महकमे की सारी लिखा-पढ़ी फ़ारसी मे

अकबर की सभा के नवरत्न
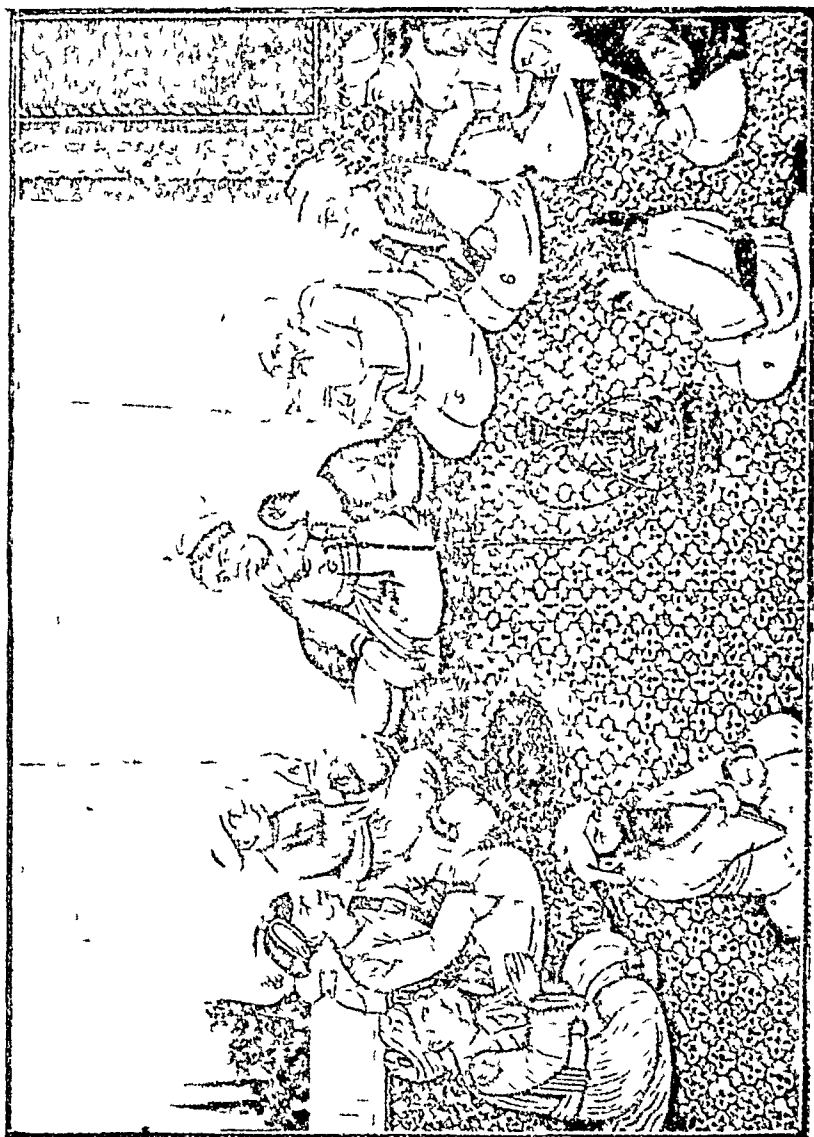
रखने की आज्ञा दे दी। यह काम अब तक हिन्दी मे होता था। परन्तु अब राजकीय भाषा फ़ारसी हो जाने से हिन्दुओ के लिए भी फारसी का ज्ञान आवश्यक हो गया।

बुढ़ापे मे टोडरमल ने अपने पद से त्याग-पत्र दे दिया था, क्योकि वह गंगा किनारे शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत करना चाहता था। परन्तु अकबर ने फिर उसे बुला लिया।

मानसिंह—मानसिह उन राजपूत राजाओ में से था, जिन्होने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली थी। इस की भूआ अकबर को व्याही थी। अकबर ने इसको बहुत ऊँचा पद दिया था और वह इस का बहुत सम्मान करता था।

मानसिह उत्तम सैनिक और प्रवीण सेनापति था। अकबर ने इस को बड़े-बड़े युद्धो मे सेनापति बना कर भेजा था। इन युद्धो मे मानसिह ने बड़ी सफलता प्राप्त की थी। अकबर मानसिह पर बड़ा भरोसा करता था। राणा प्रतापसिह के विरुद्ध जब सलीम सेना ले कर भेजा गया, तो उस के साथ सम्राट् ने मानसिह को भी भेजा था। राजा मानसिह का दरबार मे बहुत मान था। उसे पंच हज़ारी मन्सबदार (५,००० सवारो का सेनापति) की उपाधि दी गई थी।

एक बार अकबर ने मानसिह से अपना नया धर्म दीन-इलाही स्वीकार करने को कहा, परन्तु मानसिह ने साफ इन्कार कर दिया।

कहते है जिस भूमि पर ताजमहल बना हुआ है वह राजा मानसिह की ही थी।

बीरबल—बीरबल का असली नाम महेशदास था। वह कालपी का रहने वाला एक ब्राह्मण था। वह बड़ा मसखरा था, और अपने लतीफ़ों से सम्राट् को सदा प्रसन्न रखता था। वह सदा मौके पर ऐसी हास्यपूर्ण बात कहता था कि सम्राट् प्रसन्न हो जाता था। बीरबल के नाम से आजकल बहुत से लतीफे प्रसिद्ध है। वे सब बीरबल के नहीं है। अधिकाश केवल उन्हे अधिक रोचक बनाने की दृष्टि से बीरबल के नाम से कहे जाते है।

बीरबल केवल मसखरा ही नहीं था, किन्तु रण-कुशल भी था। उसको सम्राट् ने कई युद्धो मे भेजा था। वहाँ उसने अच्छी ख्याति प्राप्त की थी। बीरबल हिन्दी का भी अच्छा कवि था। इन्हीं गुणों पर मुग्ध हो कर अकबर ने उसे अपना प्रेम-पात्र बनाया था, और उसे बंगाल का शासक नियत किया था। बादशाह ने उस की मृत्यु पर बड़ा शोक मनाया।

यहाँ हम बीरबल के कुछ लतीफे लिखते है —

(१) एक बार अकबर ने बीरबल से कहा, "देखो बीरबल जिन नामो के पीछे 'बान" होता है वे बड़े दुष्ट होते है जैसे कोचबान, गाड़ीबान, फीलबान, शुतुरबान आदि।" बीरबल ने उत्तर दिया, "जी हाँ, महरबान।" यह सुन कर बादशाह बहुत हँसा।

(२) बीरबल तम्बाकू खाता था और बादशाह नहीं। एक बार रास्ते मे तम्बाकू के खेत मे एक गधा घास चर रहा था। उसे देख कर बादशाह बोले, "देखो तम्बाकू कैसी बुरी चीज है कि उसे गदहा भी नहीं खाता।" बीरबल ने तुरन्त उत्तर दिया, "सच है गदहे तम्बाकू नही खाते।" इस जवाब ने बादशाह को निरुत्तर कर दिया।

(३) एक बार बादशाह ने बीरबल से पूछा, "ब्राह्मण प्यासा क्यो, और गदहा उदासा क्यो ?" बीरबल ने उत्तर दिया, "हुज़ूर, लोटा न था।" इस उत्तर को सुन कर बादशाह बहुत ख़ुश हुए।

(४) एक बार बादशाह ने बीरबल से पूछा, "मेरे राज्य मे अंधे ज़ियादा है या सूझते ?" बीरबल ने उत्तर दिया, अंधे।" बादशाह ने पूछा, "यह कैसे ?" बीरबल ने इसका जवाब देने के लिए दो दिन की मोहलत मॉगी। दूसरे दिन बीरबल सड़क के किनारे बैठ कर रस्सी बटने लगा। जो लोग उस रास्ते से निकले उन मे से बहुतो ने पूछा, "बीरबल आज क्या कर रहे हो ?" बीरबल ने फ़ौरन उन का नाम अंधो की फ़हरिस्त में लिख लिया। अकस्मात् बादशाह भी उधर निकले, और उन्होने भी यही सवाल पूछा। इसलिए उन का नाम भी उस सूची मे लिख लिया गया। परन्तु थोड़े से आदमियो ने पूछा, "बीरबल क्या आज रस्सी बट रहे हो ?" ऐसे मनुष्यो का नाम उसने सूझतों की सूची मे लिखा। दूसरे दिन जब बीरबल दरबार मे पहुँचा तो बादशाह ने दरयाफ़्त किया, "कहो बीरबल मेरे सवाल का जवाब सोचा ?" बीरबल ने फ़ौरन उन दोनो फ़हरिस्तो को पेश किया। बादशाह अंधो की फ़हरिस्त को देख कर हैरान हुआ, और जब उस में अपना भी नाम देखा तो बहुत ही आश्चर्य करने लगा।

(५) एक बार बादशाह ने दरबारियो से पूछा, "पत्ता कौन सा सब से बड़ा होता है ?" किसी ने कहा 'केले का," किसी ने कहा, "अरवी का" और किसी ने कहा, "साखू का।" मगर बीरबल बोला 'पान का'। बादशाह ने पूछा, 'यह कैसे ?'

बीरबल ने उत्तर दिया, 'पान का पत्ता इसलिए बड़ा है कि वह हुजूर के मुँह तक पहुँचता है।' यह सुन कर बादशाह ने उसे बहुत सा इनाम दिया।

रहीम — रहीम बैरम खाँ का पुत्र था। इस का पूरा नाम अब्दुल रहीम खानखाना था। पिता की मृत्यु के समय उसकी अवस्था केवल ४ वर्ष की थी। अकबर ने उस को बड़ी सावधानी से पाला, और उसकी शिक्षा का बड़ा उत्तम प्रबन्ध किया। बडे होने पर वह बडा प्रतिभाशाली मनुष्य निकला। वह भी एक बड़ा सेनापति हो गया है। उसने फ़ारसी और हिन्दी की बहुत अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी। हिन्दी मे 'रहीम के दोहे' अब तक बड़े चाव से पढ़े जाते है। जब तक हिन्दी भाषा जीवित रहेगी, रहीम का नाम सदा आदर के साथ लिया जायगा।

ऊपर लिखे मनुष्यो के अतिरिक्त अकबर के दरबार मे और भी बहुत से योग्य मनुष्य आश्रय पाते थे। तानसेन गवैया का नाम किस ने नहीं सुना होगा? यह भी अकबर के दरबार मे रहता था। दसवन्त नामक प्रसिद्ध चित्रकार भी उसके दरबार मे रहता था।

प्रश्न

१ शेख मुबारक कौन था?

२ अबुल फ़ज़्ल के विषय मे क्या जानते हो?

३ फ़ैज़ी कौन था? उसके विषय मे क्या जानते हो?

४ अबुल फ़ैज़ी और अबुल फ़ज़्ल के धार्मिक विचार कैसे थे? इन का अकबर के विचारो पर क्या प्रभाव पडा?

५ टोडरमल के विषय में क्या जानते हो ? अकबर के समय में साम्राज्य की उन्नति के लिए उसने क्या-क्या काम किये ?

६ मानसिंह का अकबर के दरबार में कैसा मान था ?

७ बीरबल कौन था ? इसके २-४ चुटकुले सुनाओ।

८ रहीम कौन था ? वह किस भाषा का कवि था ? क्या अन्य मुसलमान हिन्दी कवियों के नाम तुम बता सकते हो ?
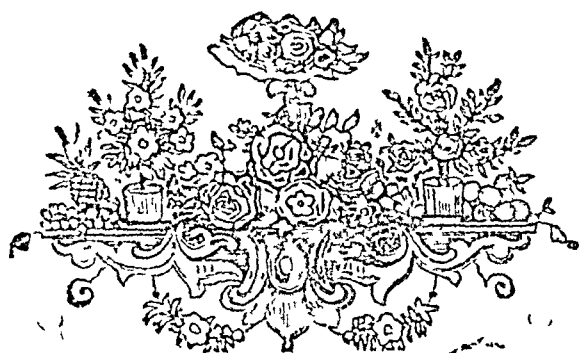
अध्याय १६

राणा प्रताप सिंह

(राजपूतों का सब से प्रसिद्ध सरदार)

भारत के पश्चिमी भाग मे राजपूताना नाम का एक प्रान्त है। इस मे कई छोटी-छोटी रियासते है। इन्ही मे से एक का नाम मेवाड़ है। प्रायः सारे ही राजपूताने मे राजपूत राजा राज्य करते है। मेवाड़ मे सीसोदिया घराने के राजा शासन करते है। राजपूताने के इतिहास मे ये अपनी वीरता और स्वातन्त्र्य-प्रेम के लिए सदा प्रसिद्ध रहे है। इन्होने राजपूताने का मस्तक सारे भारत के सामने सदा ऊँचा रक्खा है। अन्य राजपूत राज्य भी इनको सदा अपना सिरमौर समझते रहे है। केवल मेवाड़ के ही शासक 'महाराणा' कहलाने के अधिकारी समझे जाते है। यहाँ के राजाओ को यह गर्व है कि उनकी नसो मे शुद्ध क्षत्रिय रक्त बहता है, क्योकि उन्होने अपनी बेटियाँ कभी विजातियों, विशेषकर मुसलमानो, को न दी और न उनके हाथ मे पड़ने दी। इस पाठ मे हम तुम को यहाँ के सब से प्रसिद्ध राजा क्षत्रिय कुल-भूषण महाराणा प्रतापसिह का हाल बतलायेगे।

राणा प्रताप के दादा राणा साँगा थे। इन्होने ही पहले मुग़ल सम्राट् बाबर से लोहा लिया था। इनके पुत्र राणा उदयसिह उतने ही विलासी व कायर थे, जितने राणा साँगा वीर और योद्धा थे। जिस प्रकार राणा साँगा का सारा जीवन लड़ाइयो मे ही बीता था, उसी प्रकार राणा उदयसिह का जीवन भोग-विलास मे समाप्त हुआ था।

राणा प्रतापसिंह

महाराणा उदयसिंह के कई सन्तानें थीं, जिन में प्रतापसिंह सब से बड़े थे। परन्तु उदयसिंह अपना उत्तराधिकारी प्रतापसिंह को नहीं बनाना चाहते थे। उन की इच्छा अपने सब से छोटे पुत्र को युवराज बनाने की थी। इस प्रकार प्रतापसिंह की जब अपने पिता से न पटी, तो वह मेवाड़ को छोड़ कर कहीं अन्यत्र चले गये। मेवाड़ की प्रजा प्रतापसिंह से अति प्रसन्न थी। उसे राणा उदयसिंह जी का यह कार्य न भाया, और अन्त में राणा उदयसिंह की मृत्यु के पश्चात् उस ने प्रतापसिंह को ही अपना राजा बनाया।

अपने दादा राणा साँगा की भाँति राणा प्रताप का भी सारा जीवन लड़ाइयों में ही बीता। मेवाड की राजगद्दी पर बैठने के बाद उनका एक दिन भी राजसी ठाट-बाट तथा चैन से न कटा। मुगल सम्राट् अकबर से वह आजन्म लड़ाई लड़ते रहे। अकबर ने देश के प्राय सभी हिन्दू राजाओं को अपने अधीन कर लिया था, और अनेक हिन्दू राजाओं ने अपनी बेटियाँ अकबर व अन्य मुसलमानों को ब्याह दी थीं। ऐसे समय में यदि हिन्दू जाति का मस्तक ऊँचा रखने वाला कोई था, तो वह राणा प्रतापसिंह ही था। राणा प्रताप ने आजीवन अकबर की अधीनता स्वीकार न की, और न कोई पुत्री ही अकबर को ब्याही। वरन् वह जयपुर, जोधपुर आदि राज्यों के राजाओं को अति घृणा की दृष्टि से देखते थे, जिन्होंने अपनी बहिन-बेटियाँ मुसलमानों को ब्याह दी थीं। राणा उदयसिंह के राज्य-काल में चित्तौड़ पर मुसलमानों का कुछ आधिपत्य हो गया था। इसलिए महाराणा प्रताप को बहुत दु:ख था। अपने पिता के बारे में एक बार

उन्होंने स्वयं कहा था कि, "यदि मेरे और दादा राणा सॉंगा के बीच में कोई न होता, तो आज भारत मुसलमानों के अधिकार में न हो कर हिन्दुओं के अधीन होता।"

राणा प्रताप उस समय के उन सभी हिन्दू राजाओं को, जो अपनी बहिन-बेटियॉं मुसलमानों को व्याह चुके थे, बड़ी घृणा की दृष्टि से देखते थे। एक दिन आमेर के राजा मानसिंह राणा प्रतापसिंह से मिलने आये। राणा प्रताप ने अतिथि के विचार से उनकी बड़ी आवभगत की। परन्तु जब भोजन करने का समय आया, तो राणा प्रताप ने सिर में पीड़ा होने का बहाना करके उनके साथ भोजन करने से इन्कार कर दिया। राजा मानसिंह को यह बात लग गई, और वह ताड़ गये कि राणा प्रतापसिंह मुझ से घृणा करते हैं और इसलिए वह साथ भोजन न करने का बहाना करते हैं। राणा प्रताप ने यह प्रकट कर दिया कि, "मैं उस मनुष्य के साथ भोजन नहीं कर सकता जिसने एक मुसलमान को अपनी बहिन व्याह दी है।" यह सुन कर महाराज मानसिंह अति रुष्ट हुए, और बड़े क्रोध के साथ वह महाराणा प्रताप को यह चुनौती दे कर चलने लगे कि, "मैं अब आप के सिर के दर्द की दवा ले कर ही आऊँगा।" इस पर राणा ने कड़क कर उत्तर दिया कि, "मैं तुम से लड़ने को सदा तैयार हूँ। परन्तु जब आओ तो अपने बहनोई अकबर को भी साथ लेते आना।"

राजा मानसिंह जोश से भरे हुए अकबर के दरबार में पहुँचे, और उन्होंने अकबर को राणा प्रताप पर चढ़ाई करने के लिए उभारा। अकबर ने एक बड़ी भारी फौज अपने बेटे सलीम (जो पीछे जहाँगीर के नाम से प्रसिद्ध हुआ) की अध्यक्षता में राजा

मानसिह के साथ मेवाड़ पर चढ़ाई करने के लिए भेजी। राणा प्रताप भी लड़ने के लिए तैयार थे, क्योकि वह अपने देश को पराधीन नही देख सकते थे। परन्तु उन के पास केवल २२ हज़ार राजपूत सेना थी, और उनके विपक्ष मे असंख्य कटक-दल था। जुलाई सन् १५७६ ई० मे हल्दीघाटी (या, हल्दीघाट) पर, जो मेवाड़ मे एक पहाड़ी स्थान है, युद्ध हुआ। हल्दीघाटी का युद्ध राजपूताने के प्रसिद्ध युद्धो मे से एक है। शत्रुओ की सेना असंख्य होने के कारण महाराणा प्रताप को अपने १४ हज़ार वीर सैनिक मारे जाने पर भी विजय-लाभ नही हुआ। महाराणा प्रताप स्वयं बहुत घायल हुए, और उनका 'चेतक' नाम का घोड़ा भी इतना घायल हो गया कि वह मृत्यु के समीप पहुँच गया था। परन्तु इतने पर भी वह हार होने पर अपने स्वामी प्रताप को लेकर भाग चला। शत्रुओ की सेना ने राणा प्रताप को पकड़ने के लिए पीछा किया, परन्तु घायल चेतक राणा प्रताप को बचा कर ले भागा। बहुत दूर चले जाने पर प्रताप ने देखा कि मेरे पीछे एक घुड़सवार दौड़ा चला आ रहा है। निकट आने पर राणा प्रताप ने पहचाना, तो मालूम हुआ कि वह उनका छोटा भाई शक्तिसिह था जो उनका शत्रु हो कर मुसलमानी सेना की ओर हो गया था। राणा प्रताप ने समझा कि यह मुझे गिरफ्तार करने के लिए आ रहा है। इसलिए उन्होने अत्यन्त क्रोध मे आकर उसे फटकारने के लिए चेतक को रोक लिया। परन्तु इस समय शक्तिसिह अपने किये पर पछता रहा था। वह अपने भाई को विपदा मे देख कर सहायता करने के लिए आया था। उसने राणा प्रताप के पास आकर उनके चरणो मे शीश नवाया, और अपने अपराधो की क्षमा चाही। प्रताप ने उसे क्षमा कर दिया, और वह ऐसे संकट के समय मे

अपने भाई की सहायता पा कर अति प्रसन्न हुए। अब दोनों भाइयों ने मिल कर मेवाड़ के उद्धार करने की प्रतिज्ञा की। राणा प्रताप का प्यारा घोड़ा चेतक इस समय मर रहा था। शक्ति-सिंह ने अपना घोड़ा अपने भाई के हवाले किया, जिस पर चढ़ कर वे भाग गये और शत्रु-सेना के हाथ न आये। चेतक ने जहाँ पर प्राण छोड़ा था, वहाँ राणा प्रताप ने एक स्मारक बनवा दिया जो आज तक 'चेतक का चबूतरा' के नाम से प्रसिद्ध है।

अब राणा प्रताप शत्रु-सेना से छिप कर अपने परिवार को साथ ले कर जंगलो मे ही रहने लगे। वे पर्वतो और गुफाओं में निवास कर के अपना जीवन बिताने लगे। यदि आज एक स्थान पर शत्रु-सेना पता लगा कर आ गई, तो कल किसी दूसरे स्थान पर जा बसे। इसी प्रकार जंगलो व पहाड़ो मे निवास करते और अपार कष्ट झेलते हुए महाराणा प्रताप को वर्षों हो गये। शत्रु-सेना भोजन करते समय पीछा करती हुई चली आती थी, तो भोजन छोड़ कर भागना पड़ता था और कई दिन भूखे पेट ही बीत जाते थे। एक समय ऐसा हुआ कि कई दिन भूखे रहने के पश्चात् रानी ने घास के बीजों को इकट्ठा कर के रोटियाँ बनाईं, तो राजकुमारी ने कुछ रोटी खाली और कुछ फिर के खाने के लिए रख दी। इस रक्खी हुई रोटी को एक जंगली बिल्ली ले कर भाग गई। राजकुमारी उस रोटी के लिए रोने लगी। महाराणा प्रताप उस समय पास ही एक पेड़ के नीचे लेटे हुए अपनी दुख-मयी दशा पर मनन कर के पछता रहे थे कि अकस्मात् रोटी के लिए राजकुमारी का रोना देख कर उनका हृदय विचलित हो गया, और वह अपने जीवन को धिक्कारने लगे। जिस प्रताप को नाना प्रकारके संकट झेलते-झेलते वर्षों हो गये और मातृ-भूमि की

स्वतंत्रता के लिए जिसने अपने सारे सुख-आनन्द ठुकरा दिये थे, उसी प्रताप को आज उसकी राजकुमारी के रुदन ने हिला दिया। सतान का दुःख न देख कर उन्होने अकबर की अधीनता स्वीकार करनी चाही, और इस के लिए उन्होने अकबर को पत्र लिख भेजा।

अकबर राणा प्रताप की अधीनता स्वीकार करने का पत्र प्राप्त कर के बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने वह सन्धि-पत्र बीकानेर के राजा के छोटे भाई पृथ्वीराज को दिखलाया, जो कि कवि थे और अकबर के दरबार मे ही रहते थे। यद्यपि पृथ्वीराज स्वयं अकबर की अधीनता मे रहते थे, परन्तु फिर भी राणा प्रताप की प्रशंसा किये बिना उन से नही रहा जाता था। वह प्रताप को अकबर से हिन्दू-जाति की मान मर्यादा बचाने वाला समझते थे, और गिरी हुई क्षत्रिय जाति का मस्तक उन से ऊँचा समझते थे। इसलिए उन्होने संधि-पत्र देखते ही कहा कि "यह पत्र बनावटी मालूम होता है। महाराणा प्रतापसिह कभी भी ऐसा पत्र नही लिख सकते। यदि आप यह पत्र प्रताप का ही मानते है तो मुझे उन से पूछ लेने दीजिये।" अकबर ने पृथ्वीराज को ऐसा करने की आज्ञा दे दी। पृथ्वीराज ने बड़ी ही भावपूर्ण कविता मे एक पत्र प्रताप को लिखा जिस से उनका विचलित तथा निरुत्साहित हृदय पहले की भाँति जोश और उमग से भर गया। अपने पहले विचारो पर दृढ़प्रतिज्ञ होकर उन्होने पृथ्वीराज को उत्तर दे दिया कि, "मै किसी प्रकार भी अकबर से सन्धि करने को तैयार नही हूँ। जिस अकबर को अपने मुँह से 'तुर्क' कह चुका उसे 'शाह' कहने के लिए मेरी जीभ कभी तैयार नही है।"

जिस समय प्रताप ने अकबर की अधीनता को अस्वीकार किया, उस समय ऐसी ज़ोर की वर्षा हुई कि उनको पहाड़ो की

गुफाओं का निवास छोड़ना पड़ा और वह उस स्थान को छोड़ कर सिन्ध के मैदान में पहुँचे। यहीं पर उनके मंत्री भामाशाह ने अपने पूर्वजों का इकट्ठा किया हुआ समस्त द्रव्य उनको भेंट किया। यह द्रव्य इतना था कि १२ वर्ष तक ५० हज़ार सैनिक उससे रक्खे जा सकते थे। अब राणा ने फिर से सेना इकट्ठी की और वह उसको लेकर अरावली पहाड़ियों पर पहुँचे, जहाँ कि मुसलमानों की फ़ौज पड़ी हुई थी। राणा प्रताप ने उस पर आक्रमण किया, और सारी शत्रु-सेना को मार गिराया। इस जीत से उदयपुर प्रताप के अधिकार में आ गया। प्रताप की इस विजय से अकबर की इतनी क्षति हुई कि वह फिर मेवाड़ पर चढ़ाई करने का प्रबन्ध ही न कर सका। धीरे-धीरे प्रताप ने मेवाड़ का और भी बहुत सा भाग अपने अधिकार में कर लिया, परन्तु चित्तौड़ को अपने अधीन न कर सका। राणा प्रताप की प्रतिज्ञा थी कि, "जब तक मैं चित्तौड़ को फिर से वापस न ले लूँगा, तब तक सोने-चाँदी के बर्तनों में भोजन न करूँगा और न पलंग पर सोऊँगा।" कहते हैं कि प्रताप की इस प्रतिज्ञा का पालन आज तक उनके वंशज करते हैं। वे बर्तनों में पत्ते रख कर भोजन करते हैं, और पलंग पर चटाई बिछा कर शयन करते हैं।

महाराणा प्रताप का अन्तिम समय भी शान्ति के साथ व्यतीत न हुआ। एक तो वे चित्तौड़ को न ले सके, दूसरे अपने पुत्र अमरसिंह को अपने पिता की भाँति व्यसनी देख कर उन्हें बहुत ही दुःख हुआ। मरते समय जब उन्हें बहुत दुःख हो रहा था और प्राण नहीं निकलते थे, तो एक सरदार ने उनसे पूछा कि, "महाराज! क्या कारण है कि आपके प्राण इतनी वेदना होने

पर भी नहीं निकल रहे हैं ?" इस का उत्तर प्रताप ने यही दिया कि, "मुझे राजकुमार अमरसिंह से कोई आशा नहीं है। इसलिए किसी वीर पुरुष से देश के स्वाधीन करने की प्रतिज्ञा सुनने के लिए यह मेरे प्राण अब तक रुके हुए है।" इस पर सभी सरदारों ने मेवाड को स्वतंत्र करने की प्रतिज्ञा की। अब राणा प्रताप की वेदना कम हो गई, और चेहरे पर शान्ति सी छा गई। थोडी ही देर मे उनके प्राण-पखेरू उड़ गये।

इस तरह महाराणा प्रताप संसार से चल बसे। परन्तु उन की कीर्ति सदा के लिए संसार मे अमर हो गई। जब तक सृष्टि है तब तक राणा प्रताप का नाम चिरंजीव रहेगा। भारतवर्ष के प्रत्येक मनुष्य का हृदय अब तक उस वीर पुरुष के साहस का स्मरण करके उमंगे भरने लगता है। राणा प्रतापसिंह ऐसे मनुष्य हो चुके है कि राजपूत या हिन्दू-जाति ही नही वरन् समस्त भारतीय उन पर गौरव कर सकते है।

प्रश्न

१ मेवाड के महाराणा किस राजपूत-वंश मे से हैं ?

२ राणा प्रतापसिंह मेवाड़ छोड़ कर क्यो चले गये थे ?

३ राणा प्रताप ने हिन्दू-जाति का मस्तक किस प्रकार ऊँचा रक्खा ?

४ अपने पिता के बारे मे उन्होने क्या विचार प्रकट किया था ?

५ राणा प्रताप ने मानसिंह के साथ भोजन क्यो नही किया ?

६ मानसिंह ने इस अपमान का बदला कैसे लिया ?

७ हल्दीघाटी के युद्ध का क्या फल हुआ ?

८ 'चेतक' के विषय मे क्या जानते हो ?

९ शक्तिसिंह ने किस प्रकार महाराणा प्रताप की सहायता की ?

१० राणा प्रताप ने अकबर को सन्धि-पत्र क्यों लिखा ?

११ पृथ्वीराज ने उनको कैसे उत्साहित किया ?

१२ भामाशाह ने राणा प्रताप की क्या सहायता की ? उन्होंने क्या प्रतिज्ञा की ?

१३ इस पाठ से तुम क्या शिक्षा ग्रहण करते हो ?
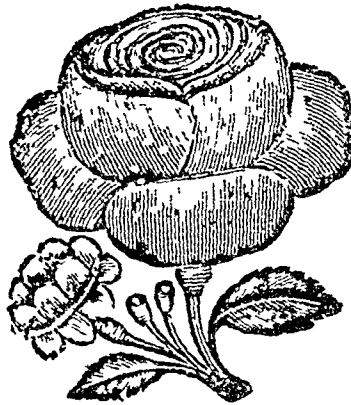
अध्याय १७

नूरजहाँ

(एक जगत् विख्यात बेगम)

अकबर की मृत्यु के पीछे उसका बेटा सलीम 'जहाँगीर' के नाम से गद्दी पर बैठा। यद्यपि जहाँगीर बड़ा वीर और योग्य पुरुष था, परंतु वह अपना बहुत सा समय आमोद-प्रमोद मे ही बिता देता था, और राज-काज मे बहुत कम भाग लेता था। उस को शराब पीने की बहुत बुरी टेव पड़ गई थी। एक दिन मे २० प्याले शराब के पी जाता था। वह कहा करता था कि, "मुझे मदिरा और स्वादिष्ट भोजन के अतिरिक्त और कुछ न चाहिए"। शराब का वह इतना शौकीन हो गया था कि अपने सिक्को पर भी उसने अपना चित्र हाथ मे शराब का प्याला लिए हुए बनवाया था। नाच-रंग देखने का भी उसको बडा चाव था। इसलिए उसने सारा राज काज अपनी मलका नूरजहाँ के हाथ मे छोड़ रक्खा था। जहाँगीर के समय मे वास्तव मे नूरजहाँ ही शासक थी। उसने इतने बड़े साम्राज्य का काम बड़ी योग्यता के साथ किया। इसी नूरजहाँ बेगम का वर्णन हम इस पाठ मे तुम को बतालायेगे।

नूरजहाँ का पिता मिर्जा गयास बेग ईरान का रहने वाला एक धनी मनुष्य था। जब वह निर्धन हो गया, तो वह अपनी स्त्री सहित रोज़गार की तलाश मे भारत की ओर चल पड़ा। उसकी स्त्री गर्भवती थी। मार्ग में उसके एक कन्या उत्पन्न हुई। इस का

नाम महरुन्निसा रक्खा गया। यही पीछे से नूरजहाँ कहलाई। जब गयास हिन्दुस्तान मे आया, तो अकबर के दरबार मे उसे एक अच्छा पद मिल गया। महरुन्निसा जब बड़ी हो गई तब उसका विवाह अलीकुली नामक एक नवयुवक के साथ कर दिया गया, जो इतिहास मे शेर अफ़ग़न के नाम से प्रसिद्ध है। अली-क़ुली को सम्राट् की ओर से बर्दवान की जागीर मिली थी। परंतु अलीकुली ने विद्रोह किया। जहाँगीर ने बंगाल के हाकिम क़ुतुबु-उद्दीन को लिखा कि वह अलीकुली के विद्रोह को शान्त कर दे। अलीकुली पकड़ कर क़ुतुबउद्दीन के सामने लाया गया। क़ुतुब-उद्दीन की सेना ने उसे घेर लिया। यह बात अलीकुली को बुरी मालूम हुई। उसने क़ुतुबउद्दीन पर वार किया और उसे बुरी तरह घायल कर दिया। क़ुतुबउद्दीन के आदमियो ने अलीकुली का काम तमाम कर दिया। क़ुतुबउद्दीन भी थोड़ी ही देर मे मर गया।

महरुन्निसा विधवा होने के पीछे अपनी माता सहित जहाँ-गीर के 'हरम' मे नोकर हो गई। जब एक दिन जहाँगीर की निगाह महरुन्निसा पर पड़ी; तो वह उस पर मोहित हो गया, क्योकि वह अत्यन्त रूपवती थी। विधवा होने से चार वर्ष पीछे महरुन्निसा का विवाह जहाँगीर के साथ हो गया। वह अब भारत के मुगल सम्राट् की महारानी हो गई, और उसका नाम 'नूर महल' अर्थात् 'महल की ज्योति' रख दिया। पीछे से यही नाम बदल कर नूरजहाँ अर्थात् 'संसार की ज्योति' कर दिया गया।

नूरजहाँ जैसी सुन्दरता मे अद्वितीय थी, वैसी ही चतुर भी थी। साम्राज्य मे उसका धीरे-धीरे प्रभाव बढता गया, यहा तक कि वह असली शासक हो गई और जहाँगीर उसके हाथ मे

केवल एक कठपुतली मात्र रह गया। सारा राज-काज वही करने लगी। वह झरोखे में बैठती थी। लोगों की फरियादें सुनती थी। उसका नाम जहाँगीर के साथ हर एक सरकारी कागज व सिक्कों पर रहने लगा। १६ वर्ष पर्यन्त अर्थात् जहाँगीर की मृत्यु के समय तक साम्राज्य में उसी का दौर-दौरा रहा।

नूरजहाँ

नूरजहाँ बड़ी ही योग्य और निपुण थी। वह फारसी बहुत अच्छी तरह जानती थी। वह कविता भी करती थी। अपनी दयालुता तथा दान शीलता के लिए नूरजहाँ बहुत प्रसिद्ध थी। वह उस समय की सारी ललित कलाओं में बड़ी प्रवीण थी, जैसे चित्रकारी, कसीदा, काढ़ना आदि। उसने सहस्रों मुसलमान लड़कियों का पालन किया, और उनके विवाह करवा दिये।

कहा जाता है कि गुलाब का इत्र पहले-पहल नूरजहाँ ने ही मालूम किया था। उसके हम्माम में गुलाब के फूल पड़े रहते थे। एक बार उसने पानी की सतह पर तेल की बूँदें तैरती हुई देखी।

फिर गुलाब का तेल निकलवाया गया। यही गुलाब का इत्र कहलाता है, और इत्रों मे सब से बढ़िया माना जाता है। नूरजहाँ ने कई नये प्रकार के गहने भी प्रचलित किये थे। उसने वस्त्रों आदि मे कई प्रकार के फ़ैशन चलाये।

जहाँगीर

नूरजहाँ अबला होते हुए भी सबला थी। वह बड़ी वीर थी। अपने पति के साथ शिकार खेलने जाया करती थी।

जहाँगीर ने उसके विषय मे लिखा है कि वह कभी निशाना न चूकती थी। कई शेरो का शिकार उसने अपने हाथो से किया। वह युद्ध मे भी हाथी पर सवार हो कर जाती थी। एक बार जहाँगीर के बेटे ख़ुर्रम ने विद्रोह किया। उसका साथ महाबतखाँ नामक शाही फ़ौज के सेनापति ने भी दिया। विद्रोही जहाँगीर को बन्दी करके ले गये। नूरजहाँ स्वय वहाँ एक सेना लेकर पहुँची, और बड़ी योग्यता से अपने पति को उन लोगो के चंगुल से छुड़ा लाई।

नूरजहाँ के प्रभुत्व का प्रभाव जहाँगीर पर तो अच्छा पडा, क्योकि वह उसकी क्रूरता को रोके रहती थी। परन्तु साम्राज्य पर उसका प्रभाव अच्छा नही पड़ा। उसने अपने सम्बन्धियो को ऊँचे-ऊँचे पद दिये। उसका पिता एतमादुद्दौला व भाई आसफ़-ज़ाह साम्राज्य मे प्रधान कर्मचारी थे। इस से लोगो मे द्वेष उत्पन्न हो गया, और बहुत से षड्यन्त्र रचे जाने लगे। महाबत ख़ाँ व ख़ुर्रम का विद्रोह नूरजहाँ के ही कारण हुआ, क्योकि वह उसको ऊँचा उठता हुआ नही देख सकती थी। वह यह भी चाहती था कि उसका जामात्र राजकुमार शहरयार सम्राट् की मृत्यु के पीछे गद्दी पर बैठे, परन्तु महाबत खाँ राजकुमार खर्रम को गद्दी पर बैठाना चाहता था। जहाँगीर की मृत्यु के पीछे इसी लिए दोनो दलो मे युद्ध हुआ, जिसमे महाबत खाँ की विजय रही। नूरजहाँ को पेशन दे दी गई, वह लाहौर मे रहने लगी। पति की मृत्यु के १८ वर्ष पश्चात् उसने परलोक को कूच किया।

भारत मे तीन मुसलमान रानियो ने नाम पाया है—सुल्तान रजिया, चाँद बीबी और नूरजहाँ बेगम। परन्तु इन तीनो मे नूरजहाँ सब से अधिक प्रसिद्ध है।

प्रश्न

१ जहाँगीर का असली नाम क्या था, और नूरजहाँ का क्या था ?

२ अलीकुली कैसे मारा गया ?

३ नूरजहाँ का विवाह जहाँगीर से कैसे हुआ ?

४ कैसे सिद्ध करोगे कि नूरजहाँ अबला होते हुए भी सबला थी ?

५ नूरजहाँ का चरित्र वर्णन करो।

६ नूरजहाँ का प्रभाव साम्राज्य पर अच्छा क्यों नहीं पड़ा ?

७ भारत के इतिहास में कौन सी तीन मुसलमान रानियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं ?

अध्याय १८

शाहजहाँ

(एक शानदार बादशाह)

बालको! तुम मे से भला ऐसा कौन होगा कि जिसने ताजमहल नामक सुन्दर इमारत का नाम न सुना होगा? परन्तु क्या तुम इसके बनवाने वाले के विषय मे भी कुछ जानते हो? यह बादशाह शाहजहाँ ने बनवाया था। इस पाठ मे तुमको इसी बादशाह का कुछ वर्णन बतलाया जायगा।

शाहजहाँ

शाहजहाँ का वास्तविक नाम ख़ुर्रम था। यह अकबर का पोता था। इसकी मा राजपूतनी थी, और इसका पिता जहाँगीर आधा राजपूत था। शाहजहाँ जहाँगीर की मृत्यु के पीछे सिहासन पर बैठा, और उसने ३० वर्ष तक राज्य किया। गद्दी पर बैठते ही उसने अपने सब सम्बन्धियो और उनकी सन्तान का बध करवा डाला, जिससे कोई भी गद्दी का दावीदार न बचे। यह अवश्य बड़ी निर्दयता का काम था, परन्तु आगे चल कर शाहजहाँ ने अपने शासन-काल मे अत्याचार का कोई कार्य नही किया।

केवल विद्रोहियों को दबाने में ही उसने कठोरता का बर्ताव किया। वह कट्टर मुसलमान था, परन्तु धार्मिक मामलो में कुछ-कुछ अकबर की नीति का अनुकरण करता था। हिन्दुओं को भी ऊंचे पदों पर नियत करता था। परन्तु कहीं-कहीं उसने हिन्दुओं के मन्दिर तुड़वा दिये थे। बस इतनी ही धार्मिक असहिष्णुता उस मे थी।

शाहजहाँ के गद्दी पर बैठते ही नूरजहाँ का प्रभुत्व एक दम जाता रहा। उसे दो लाख रुपये साल की पेन्शन दे दी गई। शाहजहॉ भी अपनी स्त्री मुमताज़महल को बहुत प्यार करता था। परन्तु उसने उसे नूरजहाँ की तरह राजकाज नहीं सोपा। शाहजहॉ एक वीर मनुष्य था। उसने कई युद्धो मे अपनी रण-कुशलता का परिचय दिया था। उसके समय मे दक्षिण मे कुछ लड़ाइयाँ लड़ी गईं और कुछ उत्तर-पश्चिमी सीमान्त के पार।

शाहजहाँ को दो बातों का बड़ा शौक़ था—धन संचय करने का, और बढ़िया इमारते बनवाने का। उसने कई तहख़ाने बनवाये थे, जिन मे उसने बहुत सा सोना-चॉदी संचय किया था। राज-कोष मे अपार सम्पत्ति हो गई थी। एक विदेशी यात्री लिखता है कि, "उसके कोष मे ३० अरब रुपया था, और यह धन दिन पर दिन बढ़ता जाता था।" उसका सिहासन जिस पर वह दरबार में बैठता था अत्यन्त सुन्दर व बहुमूल्य था। वह ३ गज़ लम्बा, २॥ गज़ चौड़ा और ५ फ़ुट ऊँचा था। चढ़ने के लिए तीन सुन्दर सीढ़ियाँ बनी हुई थीं। खम्भों के सिरो पर सुन्दर मोर बने हुए थे। चारों ओर सिहासन में हीरे व जवाहिरात जड़े हुए थे। इनमें एक हीरा १४ लाख रुपये का बतलाया जाता है। इस सिंहासन को 'तख़्त-ताऊस' (अथवा मयूर-सिहासन)

कहते थे। इसके बनने मे ७ वर्ष लगे, और कुल १० करोड़ रुपया व्यय हुआ। बाद मे इसको नादिरशाह फारस ले गया, जहाँ वह आज तक मौजूद है।

सम्राट् ने अनेक सुन्दर इमारते भी बनवाईं, जिनमें आगरे का ताजमहल (ताजबीबी का रौजा) सब से प्रसिद्ध है। यह ससार मे सब से सुन्दर भवन है। इसका वर्णन तुमको अगले पाठ मे बतलाया जायगा। ताजमहल के अतिरिक्त आगरे के क़िले मे मोती मसजिद भी शाहजहाँ ने बनवाई। दिल्ली मे उसने दीवान ख़ास, दीवान आम और जामा मसजिद नामक सुन्दर इमारते बनवाई। दीवान ख़ास पर फ़ारसी मे एक प्रसिद्ध शेर लिखा हुआ है, जिसका आशय यह है कि, "यदि भूतल पर कहीं स्वर्ग है तो यही है, यही है, यही है।" शाहजहाँनाबाद या नई दिल्ली भी शाहजाहाँ ने ही बसाई थी।

शाहजहाँ के अन्तिम वर्ष बडे दुःख मे बीते। उसकी स्त्री मुमताज़महल का तो देहान्त हो ही चुका था। उसके पुत्र सिंहासन पर बैठने के लिए षड्यन्त्र रचने लगे। जब वह अकस्मात् बीमार पड़ गया, तो उसके पुत्रो मे राज्य के लिए घरेलू युद्ध होने लगा। शाहजहाँ के चार पुत्र थे। सब से बड़ा दारा था, जो उसी के पास रहता था और राज्य का कार्य करता था। सम्राट् दारा को ही अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था। शुजा बगाल का शासक नियत किया गया था, और मुराद गुजरात का। औरगज़ेब दूर दक्षिण मे भेज दिया गया था। सब से पहले शुजा एक सेना तैयार कर के दिल्ली की ओर बढ़ा, परंतु वह बड़ा विलासी और मूर्ख था। शाही सेना से युद्ध हुआ। वह हार गया और न मालूम कहाँ भाग गया। औरगजेब ने

मुराद को लिखा कि, "हमारा भाई दारा राज्य करने के बिल्कुल अयोग्य है। हम तुम दोनों मिल कर उसको हरा दे। जीत होने पर तुम राज्य करना और मैं फ़क़ीर हो जाऊँगा।" मुराद दसपट्टी मे आगया। दोनों भाइयो की एकत्रित सेनाएँ दिल्ली की ओर बढ़ी। उधर से दारा शाही सेना लेकर चल पड़ा। दोनों मे आगरे के निकट समूगढ़ के मैदान पर मुठभेड़ हुई। एक बार औरंगज़ेब का हाथी मैदान छोड़ कर भागने वाला ही था कि उसने आज्ञा दे दी कि हाथी के पैर ज़ंजीरों से जकड़ दो ताकि वह भाग न सके। घमासान युद्ध के बीच मे ही नमाज़ का समय आ जाने पर औरंगज़ेब ने हाथी से उतर कर नमाज़ पढ़ी। इन दोनों बातो का उसके सैनिको पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा। वे जी तोड़ कर लड़े। उधर दारा हौदे का बन्द टूट जाने से हाथी से गिर पड़ा। उसकी सेना मे भगदड़ मच गई। मैदान औरंगज़ेब ने मार लिया। उसने आगरा और देहली पर शीघ्र ही अधिकार कर लिया, और पिता तथा अन्य सारे सम्बन्धी क़ैद कर लिये, जिनमे से बहुत से बाद को मार डाले गये। अब बच रहा मुराद; सो औरंगज़ेब ने उसे एक दिन ख़ूब शराब पिलायी, और जब वह नशे में चूर हो गया, तो उसे क़ैद कर लिया। होश आने पर अपने को बन्दी देख कर मुराद के होश उड़ गये। उसने भाई से पूछा, "यह क्या माजरा है?" उत्तर मिला, "एक शराबी मनुष्य राज्य करने के सर्वथा अयोग्य है। मैं राज्य करूँगा, तुम नहीं।" बस अब क्या था? औरंगज़ेब निर्द्वन्द हो कर गद्दी पर बैठ गया।

वन्दीगृह में शाहजहाँ ७ वर्ष और जीवित रहा। यह समय भी उसका दुःख मे कटा। उसकी प्यारी पुत्री जहाँनारा भी उसके

साथ रहने लगी। वह उसकी सेवा मे रात दिन लगी रहती थी। ऐसी किम्वदन्ती प्रचलित है कि औरङ्गजेब ने शाहजहाँ से कहा कि, "तुम खाने को एक अन्न माँग लो और समय काटने के लिए एक पेशा स्वीकार कर लो।" शाहजहाँ ने खाने के लिए चना माँगा, और लड़कों के पढ़ाने का पेशा स्वीकार किया। पिछली बात पर औरङ्गजेब ने कहा, 'मालूम होता है कि तुम्हारे दिमाग से अभी बादशाहत की बू नही गई है।" एक बार शाहजहाँ ने दुखी हो कर औरङ्गजेब को एक पत्र लिखा था, जिसका आशय यह था कि, "हिन्दू प्रशंसा के योग्य है जो अपने मुर्दों को भी जल देते है। तुम कैसे मुसलमान हो जो अपने जीवित बूढ़े पिता को भी पानी के लिए तरसाते हो?"

शाहजहाँ ४० वर्ष राज्य करने के बाद परलोक सिधारा। उसका शासन-काल मुगल-साम्राज्य का स्वर्ण-युग था। चारो ओर राज्य मे शान्ति थी। देश मे सम्पत्ति बहुत थी। सम्राट् के वैभव की चर्चा दूर-दूर के देशो मे की जाती थी। उसका दरबार ठाट-बाट में संसार मे अपनी बराबरी नही रखता था। प्रजा भी सुखी और समृद्धिशाली थी।

प्रश्न

१ ताजमहल को किसने बनवाया था?
२ गद्दी पर बैठते ही शाहजहाँ ने कौन सा निर्दयता का काम किया?
३ शाहजहाँ के शाही कोष मे कितना धन था?
४ 'तख्त ताऊस' के बारे में तुम क्या जानते हो?
५ ताजमहल कहाँ है? इस के विषय मे तुम क्या जानते हो?
६ औरङ्गज़ेब दिल्ली के सिंहासन पर कैसे बैठा?

अध्याय १९

ताजमहल

(ससार की एक प्रसिद्ध इमारत)

बालको ! इस पाठ में हम तुमको संसार की अत्यन्त प्रसिद्ध इमारत "ताजमहल" का वर्णन बतलायेंगे । तुम मे से बहुतेरो ने तो उसे देखा भी होगा । यह इमारत आगरे में यमुना नदी के दायें किनारे पर बनी हुई है । यद्यपि इसे बने ३०० वर्ष हुए, परन्तु फिर भी देखने से ऐसा मालूम होता है मानो आज ही बन कर तैयार हुई हो । इसकी गिनती संसार की सर्वश्रेष्ठ इमारतों और अत्यन्त आश्चर्यजनक वस्तुओं मे की जाती है । प्रत्येक विदेशी जो भारतवर्ष में आता है इस इमारत को बिना देखे नहीं लौटता । सभी विदेशी यात्रियो ने इसे देख कर दाँतो तले उँगली दबाई है । संसार के सभी विद्वान् इस विषय मे एक मत हैं कि दुनियाँ की कोई भी इमारत सुन्दरता में इसकी बराबरी नही कर सकती ।

मुमताज़ महल

जैसा तुम पिछले पाठ में पढ़ चुके हो ताजमहल को मुग़ल सम्राट् शाहजहाँ ने अपनी बेगम मुमताज़ महल की यादगार में बनवाया था । मुमताज़ महल नूरजहाँ की भतीजी थी । बादशाह शाहजहाँ इसे बहुत प्यार करते थे । मृत्यु-शैया पर पड़े हुए

वेगम ने अपने पति से कहा था कि, "यदि आप मुझ
पर सच्चा प्यार करते है, तो मेरे मरने के वाद दूसरा
विवाह न करना, और मेरा एक ऐसा स्मारक वनवाना जो संसार
मे अद्वितीय व अनोखा हो और मेरे ऊपर आप का जो प्रेम है
उसे प्रकट करता रहे।" वादशाह ने ऐसा ही किया। जव मुम
ताज वेगम १६ वर्ष के सुहाग के वाद परलोक-गामिनी हुई तो
शाहजहाँ ने दूसरा व्याह नहीं किया, यद्यपि वह ३५ वर्ष और
जीवित रहा; और अपने दिए हुए वचनो के अनुसार उसने एक
अनुपम स्मारक 'ताजमहल' या ताजवीवी का रौजा वनवा डाला
वेगम की मृत्यु के पीछे शाहजहाँ को महान् दुःख हुआ, यहाँ तक
कि एक बार तो उसने फकीर हो जाने का विचार कर लिया था

ताजमहल को बनाने के लिए सारे एशिया से सैकड़ो-हजार
रुपया वेतन पाने वाले शिल्पकार आये थे। कुछ लोगो का यह
कहना है कि योरुप से भी कारीगर वुलाये गये थे। परन्तु यह
बात प्रमाणरहित मालूम होती है। नित्य प्रति सैकड़ो ही मज़दूर
और कारीगर काम करते थे। २० वर्ष के निरन्तर परिश्रम के
पीछे २० करोड़ रुपये की लागत मे यह तैयार हुआ था। जिस
चबूतरे पर यह बना हुआ है, उसके चारो कोनो पर चार मीनार
है, जिनमे से प्रत्येक १५० फुट ऊँची है। इनमे ऊपर तक चढ़ने की
सीढ़ियाँ बनी हुई है। बीचो-बीच मे एक विशाल गुम्बद है। इस
गुम्बद के भीतर शाहजहाँ और उसकी प्यारी बेगम मुमताज
महल की कब्रे है। यात्री कब्रो के दो जोड़े देखता है। असली कब्रे
नीचे है, जहाँ अँधेरा सा रहता है और शान्ति का अखण्ड राज्य
है। ऊपर की कब्रे केवल नीचे की कब्रो की नक़ले है। सा
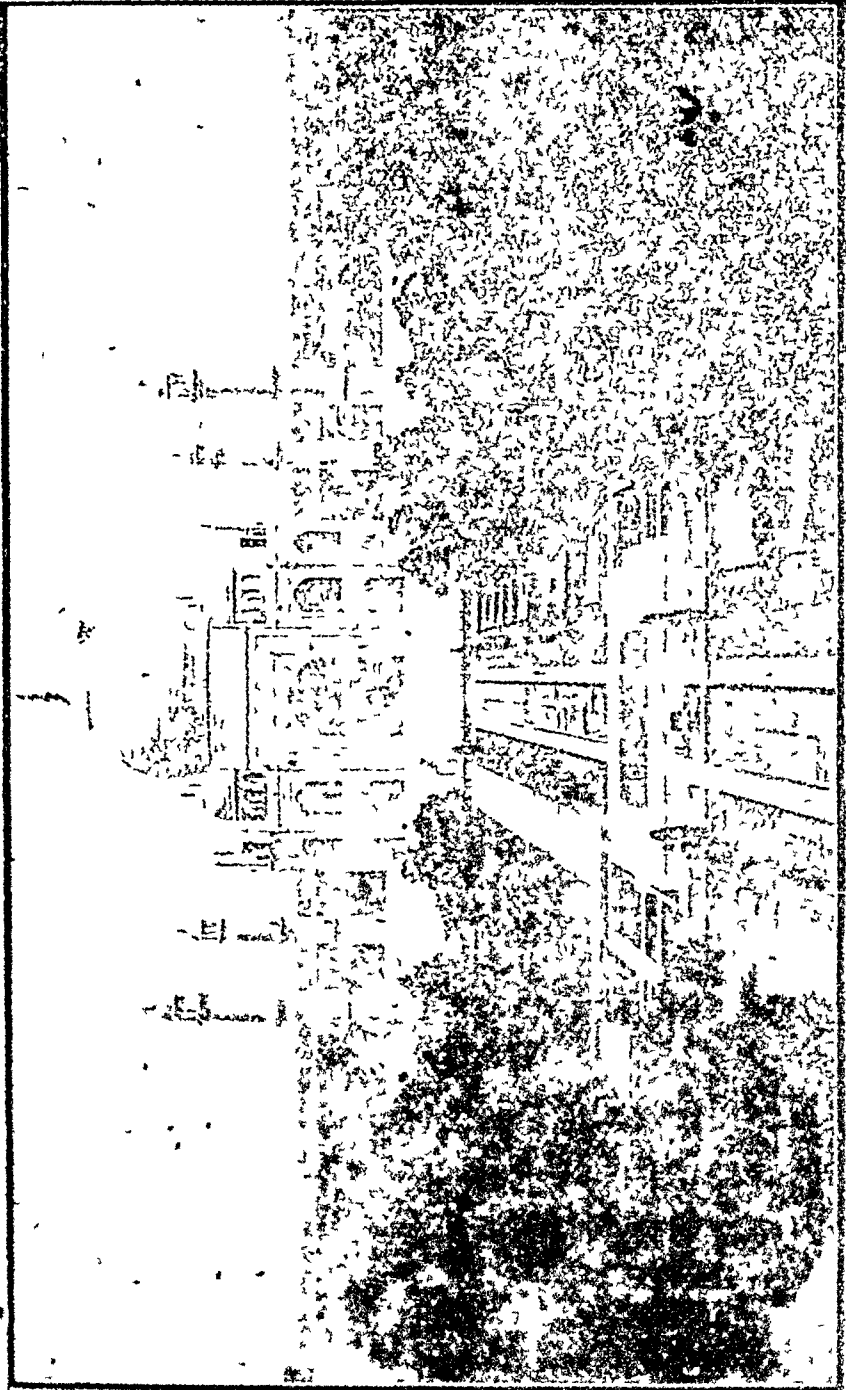
ताजमहल

इमारत सफेद संगमरमर की बनी हुई है, और नाना प्रकार के रंग-बिरंगे बहुमूल्य पत्थरों के काम से सुशोभित है। सामने की ओर फव्वारों की एक पंक्ति है, और वहीं पर संगमरमर का एक तालाब है जिसमें रंग-बिरंगी मछलियाँ घूमती-फिरती है। रौजे से लगा ही हुआ एक सुहावना बाग़ है, जिसमे सुपारी, इलायची, अशोक आदि भाँति-भाँति के सुहावने पेड़ लगे हुए है और नाना प्रकार के फूलदार पौधे है। विद्वानों ने इसकी सुन्दरता की प्रशंसा अनेक प्रकार से की है। एक विद्वान तो इसको 'संगमरमर का बबूला' कहता है। चाँदनी रात मे रौजे की सुन्दरता दुगनी हो जाती है। यमुना के दूसरी पार से देखने से ऐसा मालूम होता है मानो संगमरमर का एक विशाल महल नीले पानी पर तैर रहा हो। सारांश यह है कि ताजमहल की शोभा लिखने या कहने मे नही आ सकती, वह तो स्वयं आँखो द्वारा देखने से ही जानी जा सकती है।

बादशाह शाहजहाँ ने इसके प्रबन्ध आदि के व्यय के लिए इससे ३० गाँव लगा दिये थे। वर्तमान काल मे ब्रिटिश सरकार भी उसकी रक्षा का भली भाँति प्रबन्ध करती है। कहा जाता है कि शाहजहाँ की इच्छा थी कि वह एक ऐसा ही रौज़ा अपने स्मारक स्वरूप जमुना के दूसरे किनारे पर ताजमहल के ठीक सामने बनवाये, परन्तु परमात्मा ने उसकी वह इच्छा पूर्ण न होने दी। वह अधिक काल तक जीवित न रहा, और मृत्यु के पश्चात् वह भी अपनी बेगम की क़ब्र के पास ताजमहल मे ही दफन किया गया। इस स्मारक से शाहजहां का नाम संसार मे अमर हो गया है।

प्रश्न

१ मरते समय मुमताज़ महल ने अपने पति से क्या कहा था ?

२ ताजमहल के बनवाने में कितना धन और समय ख़र्च हुआ था ?

३ इस इमारत में कौन-कौन सी सुन्दरता की बातें है ?
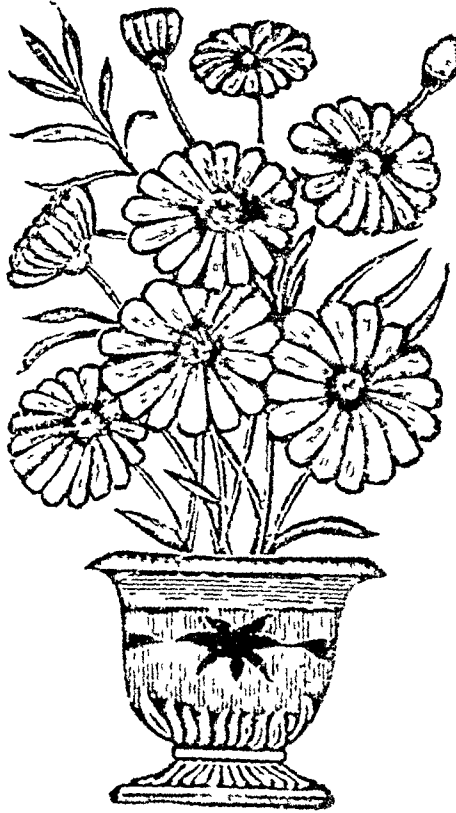
अध्याय २०

औरंगज़ेब

(एक कट्टर मुसलमान बादशाह)

बालको ! इस पाठ मे हम तुम को एक ऐसे बादशाह का वर्णन सुनायेगे, जिसने अपनी थोड़ी सी भूल के कारण बहुत बड़े साम्राज्य का नाश कर डाला यह शाहजहाँ का बेटा और अन्तिम बड़ा मुग़ल सम्राट् औरङ्ग़ज़ेब था।

औरङ्ग़ज़ेब

औरंगजेब, जैसा तुम पढ़ चुके हो, अपने भाइयो को युद्ध मे हरा कर और अपने पिता को बन्दी कर के गद्दी पर बैठा था। सिहासन पर बैठते ही अपने पिता की भाँति उसने पहला काम यह यह किया कि अपने सारे कुटुम्बियो को या तो क़ैद कर लिया या मरवा डाला, और फिर निर्द्वन्द होकर राज्य करने लगा।

औरङ्गजेब बड़ा विचित्र मनुष्य था। वह कट्टर सुन्नी मुसलमान था। उस का जीवन बहुत सीधा-सादा था। वह कभी चटक-मटक के कपड़े नही पहनता था। उस का आचार सराहनीय था। वह भोग-विलास से घृणा करता था। जिन चीज़ो

का क़ुरान मे निषेध है, उनसे सदा अलग रहता था। उसको कविता से भी घृणा थी। हँसी-दिल्लगी भी उसे पसन्द न थी। उस को गाना-बजाना बहुत नापसन्द था। एक बार लोगो ने तंग आ कर एक जनाज़ा निकाला और बहुत ज़ोर से रोते पीटते सम्राट् के महल के नीच होकर निकले। औरङ्गज़ेब ने पुछवाया कि "क्या माजरा है?" लोगो ने उत्तर दिया कि, "गान-विद्या का अन्त हो गया है और हम उसे दफ़न करने जा रहे है।" लोगो का यह ख़याल था कि ऐसा करने से शायद सम्राट् का हृदय पसीज जाय, और नाच राग को कदाचित् फिर दरबार मे स्थान मिल जाय। परन्तु सम्राट् ने बड़े मज़े मे उत्तर दिया कि, "उस को इतना गहरा गाड़ना कि वह क़ब्र मे से फिर कहीं न निकल आये।"

जब औरङ्गज़ेब राज्य का स्वामी हो गया, तो एक दिन एक मौलवी, जिसने उसे बचपन मे शिक्षा दी थी, उसके पास पारितोषिक की आशा से आया। इस पर औरङ्गज़ेब ने कहा कि, "तुमने मुझे बड़ी अधूरी शिक्षा दी। तुमने मुझे केवल फ़ारसी भाषा और उसकी व्याकरण ही पढ़ाई। तुमने मुझे अस्त्र चलाना और राजनीति के दाँव-पेच नहीं सिखाये। क्या तुम नहीं जानते थे कि सम्राट् के पुत्र की हैसियत से मुझे एक दिन राज्य के लिए भाइयों से लड़ना पड़ेगा? अब इसी मे ख़ैरियत है कि तुम अपने प्राण बचा कर चले जाओ।" बेचारा मौलवी अपना सा मुँह ले कर वापस आया। उस बेचारे की क़ब्र आगरे मे आगरा कालिज के निकट है, जिस पर किसी का ध्यान भी नहीं जाता।

औरंगज़ेब बड़ा परिश्रमी था। वह बहुत कम सोता था, और जितना समय उसे धार्मिक कामो से बचता सारा ही राज्य के

कामो से लगाता था। राज-कोष को कभी अपने काम में न लाता था। अपने हाथ से टोपियाँ बना कर जीविका निर्वाह करता था। उसने .कुरान भी न मालूम कितनी बार अपने हाथ से लिख डाली। वह सदा इस्लाम-धर्म के अनुसार पक्षपात से रहित होकर न्याय करता था। वह विद्वान् था। उस के लिखे हुए पत्र जो आजकल मौजूद है इस बात के साक्षी है। वह वीर भी था। जब वह केवल १५ वर्ष का था तो एक बार हाथियों की लड़ाई में उस का घोड़ा एक हाथी ने गिरा दिया। वह फौरन घोड़े से उतर पडा, और नंगी तलवार ले कर उस हाथी का सामना करने के लिए खड़ा हो गया। कई युद्धो मे उसने अच्छा पराक्रम दिखलाया।

परन्तु सम्राट् मे दो दोष बहुत बड़े थे। वह अपने धर्म का बड़ा पक्षपाती था, और किसी पर विश्वास नहीं करता था। राज्य मे चारो ओर गुप्तचर रहते थे, जो उस को सदा खबरे दिया करते थे। अपने भोजन और पानी को बड़ी सावधानी से रखता था ताकि उस मे कोई विष न मिला दे। जब कभी बीमार पड़ता, तो जो औषधि हकीम उसे बतलाता उसे पहले हकीम को ही स्वयं खाने के लिए कहता, और जब उस का प्रभाव उस के शरीर पर देख लेता तब स्वयं उसे खाता। जब कहीं को सेना भेजता, सदा उस के साथ एक हिन्दू और एक मुसलमान दो सेनापतियो को भेजता। अपने बेटो तक पर भी वह कभी विश्वास नही करता था, और उन को सदा अपने से दूर रखता था। वे सब उस से डरते अवश्य थे, परन्तु कोई उस से प्रेम नही करता था। एक पुत्र की तो यह दशा थी कि जब कभी वह यह सुन पाता कि अब्बाजान के यहाँ से कोई मनुष्य सदेशा ले कर आया

है, तो समाचार पाते ही वह भय के मारे कॉपने लग जाता था और पीला पड़ जाता था।

जैसा पहले बतलाया जा चुका है औरंगज़ेब एक कट्टर सुन्नी मुसलमान था। वह अपने धर्म का बड़ा पक्का था। धर्म की खातिर उसने दक्खिन मे २६ वर्ष तक बुढ़ापे के दिनो मे लड़ाइयॉ लड़ी। गोलकुण्डा और बीजापुर आदि राज्यो के शासक शिया थे और औरंगज़ेब उन को ठीक मार्ग पर लाना चाहता था, अर्थात् सुन्नी बनाना चाहता था। ये दक्खिन के राज्य तो साम्राज्य में मिल गये। परन्तु बड़ा हो जाने से और अन्यायपूर्ण लड़ाइयो के लड़ने से साम्राज्य मे दुर्बलता आ गई। धर्म की ही आड़ में उस ने हिन्दुओ पर अनेक अत्याचार किये। मथुरा व बनारस के अनेक हिन्दू मन्दिर ढा दिये गये। जज़िया नामक कर उन पर फिर लगाया गया। जब बहुत से हिन्दू औरंगजेब से ऐसा न करने की प्रार्थना करने के लिए पहुँचे, तो उसने अपना हाथी छोड़ दिया ताकि वह उनको पैरो तले रौंद डाले। हिन्दुओ को अपने त्यौहारो को खुल्लमखुल्ला मनाने की मनादी कर दी गई। बनारस में एक ब्राह्मण को खुले तौर पर पूजा करने पर जीवित जला दिया। हिन्दू ऊँचे पदो से हटा दिये गये। कोई हिन्दू मुसलमान हो जाता था, तो उसे पुरस्कार या ऊँचा पद मिल जाता था। सारांश यह है कि औरंगज़ेब अपने को मुसलमान प्रजा का शासक समझता था, हिन्दुओं का नहीं।

औरंगज़ेब की यह धार्मिक नीति अकबर के बिल्कुल विरुद्ध थी। यदि वह भी अकबर की तरह उदार होता, तो हिन्दुओं को अपनाये रहता और साम्राज्य का नाश उसकी मृत्यु के बाद ही इतना शीघ्र न होता। जहाँगीर और शाहजहाँ ने बहुत कुछ अंश

मे अकबर की ही नीति का अनुकरण किया था, इसलिए हिन्दुओ की ओर से उन्हे कोई आपत्ति न हुई। परन्तु औरंगज़ेब की नीति का फल उल्टा हो रहा। उससे तग आ कर तीन प्रबल शत्रु उत्पन्न हो गये—सिक्ख, राजपूत और मराठे। सिक्खो के गुरु अर्जन को जहाँगीर ने मरवा डाला था, तभी से वे नाराज़ थे। औरंगज़ेब ने उनके गुरु तेगबहादुर को मरवा डाला। इससे सिक्ख और भी बिगड खड़े हुए। वे खुल्लमखुल्ला विद्रोह करने लगे, और उन्होने औरंगज़ेब की नाक मे दम कर दिया। उनके गुरु गोविन्दसिह ने सिक्खो को एक लड़ाकू जाति बना दिया और उनका जीवन मुसलमानो से लड़ने मे ही बीता। फिर, औरगजेब ने राजा जसवन्तसिह के लड़को को मुसलमान बनाना चाहा, इससे राजपूत बिगड़ खड़े हुए और उन्होने भी औरंगज़ेब को चैन न लेने दिया। परन्तु सम्राट् का सब से प्रबल शत्रु दक्खिन मे पैदा हुआ। इसका नाम शिवाजी था। अत्याचारो से तंग आ कर शिवाजी ने मराठो की एक सेना तैयार की, और औरंगज़ेब को जीते जी दम न लेने दिया। शिवाजी का विशेष विवरण तुमको आगे किसी पाठ मे बतलाया जायगा।

जब औरंगज़ेब की मृत्यु हुई उस समय उसकी अवस्था लगभग ९० वर्ष की थी। मालूम होता है कि मरते समय औरगजेब को अपने कृत्यो पर बड़ा पछताना पडा। उसने अपने एक पुत्र को पत्र मे लिखा था.—"मैने संसार मे बहुत से पाप किये है। न मालूम इनका क्या बदला मिलेगा? मै कदाचित् नर्क मे ही जाऊँगा। ईश्वर मेरे अपराधो को क्षमा करे।"

औरंगजेब की धार्मिक नीति के कारण तथा अन्य कारणो से मुग़ल साम्राज्य उसकी मृत्यु के बाद ही छिन्न-भिन्न होने लगा। विशाल साम्राज्य बताशे के महल की तरह गिर पड़ा। यदि औरंगज़ेब अकबर की तरह उदार शासक होता तो मुग़ल राज्य निष्कंटक बहुत काल तक और चला करता।

प्रश्न

१ औरङ्गज़ेब का जीवन कैसा था ?

२ गान विद्या की अर्थी निकाल ने पर औरङ्गज़ेब ने क्या उत्तर दिया था ?

२ औरङ्गज़ेब ने अपने मौलवी के साथ कैसा बर्ताव किया ?

४ औरङ्गज़ेब अपना निर्वाह कैसे करता था ?

५ औरङ्गज़ेब के साहस की दो-एक बातें सुनाओ ?

६ औरङ्गज़ेब में दो बड़े दोष कौन-कौन थे ?

७ बुढ़ापे में उसने २६ वर्ष तक दक्षिण में युद्ध क्यों किया ?

८ सिद्ध करो कि हिन्दुओं के प्रति औरङ्गज़ेब की नीति अकबर की नीति से बिलकुल भिन्न थी ?

९ औरङ्गज़ेब की नीति का क्या फल हुआ ?

१० मृत्यु समय उसने अपने पुत्र को पत्र में क्या लिखा था ?

११ औरङ्गज़ेब के जीवन से तुमको क्या शिक्षा मिलती है ?
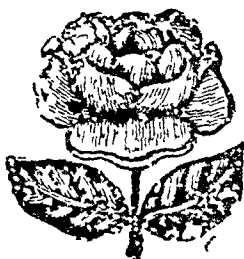
अध्याय २१

शिवाजी

(मराठो का सब से बडा सरदार)

औरंगज़ेब के पाठ मे तुम ने शिवाज़ी के बारे मे कुछ पढ़ा था। औरंगज़ेब की भद्दी नीति ने ही सिक्खो और मराठो को अपना कट्टर शत्रु बना लिया था। मराठो का मुख्य सरदार शिवाजी था, जिसने इतने विशाल राज्य के स्वामी औरंगज़ेब से लोहा लिया था, और जीते जी उसे कभी चैन न लेने दिया। इसी वीरवर शिवाजी का वर्णन इस पाठ मे तुम पढ़ोगे।

छत्रपति शिवाजी

शिवाजी का जन्म सन् १६२७ ई० मे हुआ। इस के पिता का नाम शाहजी भोसला था, जो बीजापुर के राजा के यहाँ नौकरी करते थे। शाहजी ने अपने बच्चे शिवाजी को पढ़ाने-लिखाने के लिए दादाजी कोणदेव के सुपुर्द कर दिया था। शिवाजी की रुचि पढ़ने लिखने मे न थी। उस का मन ऊधम मचाने, कुश्ती लड़ने तथा खेलने मे बहुत लगता था। इसलिए दादाजी ने भी इसे किताबे पढ़ाने से बंचित रक्खा। वह उसे घोड़े पर चढ़ना, तीर फेकना, हथियार चलाना तथा

निशाना मारना आदि बातों की शिक्षा देने लगे। थोड़े ही समय मे शिवाजी सारी अस्त्र-शस्त्र की शिक्षाओ मे निपुण हो गया। शिवाजी की माता भी बड़ी योग्य थी। वह उसे सदा वीरो की कहानियाँ सुनाया करती थी। महाभारत और रामायण की सम्पूर्ण कथाए पढ़ा लिखा न होने पर भी शिवाजी को अच्छी तरह याद हो गई थीं। बचपन से ही शिवाजी को यह लालसा थी कि वह संसार में प्राचीन हिन्दू वीर पुरुषो की तरह काम करे। उस के सारे खेल भी वीरता से भरे हुए होते थे। १६ साल की अवस्था मे ही उस मे राजा होने की इच्छा मौजूद थी। इस अवस्था से ही उस ने लूट-मार करना आरम्भ कर दिया था। उसमें वीरता के लक्षण देख कर ही दादाजी ने उसे उपदेश दिया था कि, गौ, ब्राह्मण और देवालयो की सदैव रक्षा करना, और अपने कर्तव्य से कभी पीछे न हटना"।

शिवाजी ने केवल १६ साल की अवस्था मे ही तोरण नामक क़िले पर अधिकार कर लिया था। इस क़िले मे इसे बहुत धन गढ़ा हुआ मिल गया। इस धन से शिवाजी ने बहुत से हथियार ख़रीदे, रायगढ़ नाम का एक क़िला बनवाया, तथा थोड़ी सी फ़ौज भी बना ली। अब शिवाजी ने बीजापुर राज्य के नगरो को लूटना आरम्भ कर दिया, और उसने कई क़िले अपने अधीन कर लिये। बीजापुर राज्य का राज-कोष भी लूट लिया और कोन-कन पर अपना अधिकार कर लिया। इस प्रकार शिवाजी एक बड़े प्रान्त का स्वामी हो गया। शिवाजी की ऐसी शरारत देख कर बीजापुर के राजा को बड़ा क्रोध आया। वह शिवाजी का तो कुछ न कर सका, परन्तु शिवाजी के पिता शाहजी को जो उसी के अधीन था क़ैद कर लिया, और उसे बहुत दुख देने लगा।

शाहजी अपने छुटकारे का कोई उपाय न देख कर बड़ा दुखी हुआ, और अन्त मे उसको शिवाजी से अपने छुटकारे के लिए कहना पड़ा। शिवाजी ने भी अवसर पाकर अपने पिता को कैद से छुड़ा लिया। अब बीजापुर के राजा को शिवाजी को दमन करने की सूझी। उसने एक बड़ी सेना अफ़ज़ल खाँ की अधीनता मे शिवाजी को पकड़ने के लिए भेजी। शिवाजी ने अफज़ल खाँ से लड़ना मुनासिब न समझा, और अपने पिछले किये हुए कामो पर जिन से बीजापुर राज्य को हानि पहुँची खेद प्रकट किया। अफजल खाँ ने भी सन्धि करना स्वीकार कर लिया, और उसने अपने एक आदमी को शिवाजी के पास यह सँदेश ले कर भेजा कि, "मुझे सन्धि करना स्वीकार है, और मै आप से मिलना चाहता हूँ।" शिवाजी अफज़ल से मिलने तो चला, परन्तु उसे उस पर विश्वास न था। इस कारण वह कपड़ो के भीतर 'बाघनख' छिपा कर गया, जिसे वह सदा अपने पास रखता था, और पीछे थोड़ी फौज भी रक्षा के लिए गुप्त रूप से छोड़ गया। अफजल खाँ का विचार शिवाजी से मिलने का न था, वरन् उसे पकड़ने का था। इस कारण जब उसने शिवाजी को गिरफ़्तार करना चाहा, तो शिवाजी ने 'बाघनख' से उसका काम तमाम कर दिया, और उसका सिर काट कर अपने दुर्ग को लौट आया।

इन्ही दिनो मे शिवाजी ने मुग़ल राज्य के अहमदनगर और सूरत आदि नगरो को लूटना आरम्भ कर दिया था। इस कारण औरङ्गजेब ने शाइस्ता खाँ को कुछ सेना के साथ शिवाजी को दमन करने के लिए भेजा। शाइस्ता खाँ अपनी सेना सहित पूना पहुँचा। जब शिवाजी को यह सब मालूम हुआ, तो वह साधुओ का वेष बना कर एक बरात के साथ अपने कुछ सैनिको को

साथ ले कर पूना मे घुस गया और रात को शाइस्ता ख़ाँ पर धावा बोल दिया। शाइस्ता ख़ाँ बच कर एक खिड़की की राह हो कर भाग गया, परन्तु उसकी उँगलियाँ शिवाजी की तलवार से खिड़की से कूदते समय कट गईं। शाइस्ता ख़ाँ शिवाजी से इतना डरा कि वह फिर जन्म भर दक्षिण की ओर न आया और बंगाल चला गया।

अब औरङ्गज़ेब ने दिलेरख़ाँ व राजा जयसिह को एक बडी सेना के साथ शिवाजी के विरुद्ध भेजा। परन्तु लड़ाई न हुई, और जयसिह बड़ी चालाकी से शिवाजी को समझा-बुझा कर दिल्ली लिवा ले गया। यहाँ औरङ्गज़ेब ने उसे अपमानित करके क़ैद कर लिया। अब शिवाजी ने बीमारी का बहाना बनाया। रोज़ दान-पुण्य होने लगे, और गरीबो को मिठाई बटने लगी। एक बार मिठाइयो के आये हुए टोकरे जब वापस जा रहे थे, तो उन्ही मे से एक मे शिवाजी चुपके से बैठ कर कैदखाने से निकल भागा, और साधुओ जैसे गेरुआ वस्त्र पहन कर घूमते फिरते दक्षिण पहुँच कर अपने राज्य को फिर से जा सँभाला। जब औरङ्गज़ेब को शिवाजी के भाग जाने का हाल मालूम हुआ, तो उसने चारो ओर उसे पकड़ने के लिए फ़ौजे दौड़ाईं। परन्तु शिवाजी फिर हाथ आने वाला कहाँ था।

अब की बार औरङ्गज़ेब ने जसवन्तसिह को शिवाजी से लड़ने भेजा। परन्तु दोनो पक्षो मे सन्धि हो गई। इस के बाद कुछ वर्ष पीछे औरंगज़ेब और शिवाजी में फिर युद्ध हुआ, जिसमे मुगल हार गये, और मराठो की विजय हुई। अब शिवाजी एक स्वतन्त्र राजा की भाँति थे। उन्होने अपने नाम के सिक्के भी ढलवाये, और औरंगजेब ने भी उन्हे एक स्वतन्त्र राजा मान कर

राजा की उपाधि से विभूषित किया। छत्रपति शिवाजी का राज्या-भिषेक बड़ी धूम-धाम से हुआ और रायगढ़ को उन्होंने अपनी राजधानी बनाया। उन्होंने खानदेश, बरार और गुजरात को भी जीत लिया था और आसपास के छोटे-मोटे ज़िलों से 'चौथ' व 'सरदेशमुखी' वसूल करते हुए राज्य करने लगे। वह अपना शासन आठ सदस्यों की समिति द्वारा चलाते थे। इन आठ सदस्यों में एक प्रधान मन्त्री था, जो 'पेशवा' कहलाता था। ऊपर कहे हुए सदस्यों को ही आपके राज्य का एक-एक विभाग सुपुर्द था। उपज का $\frac{२}{५}$ भाग किसानों से सरकारी खज़ाने मे आता था। सभी कर्मचारियों और फ़ौज को नियत समय पर ही वेतन मिल जाता था। प्रजा के मामलों के निपटारे के लिए अदालतें नहीं थीं वरन् पञ्चायतें थीं, और उन्हीं के द्वारा सब मामले तै होते थे।

शिवाजी डीलडौल के नाटे, परन्तु हृष्ट-पुष्ट थे। उनके चेहरे से तेज व वीरता टपकती थी। उन का रोब दूसरे मनुष्य पर बहुत शीघ्र ही जम जाता था। इनका चरित्र बहुत ऊँचा था। यह गौ, ब्राह्मण और किसानों की रक्षा करना अपना प्रधान कर्त्तव्य समझते थे। जब कभी यह किसी शहर को लूटते तो स्त्री, बच्चे और किसानों को कभी नहीं सताते थे, चाहे वे किसी भी जाति के क्यों न हों। मुसलमानों की स्त्रियाँ यदि किसी प्रकार इन की क़ैद में आ जाती थीं, तो ये उन की बड़ी देख-भाल रखते थे और सकुशल उन्हे शत्रुओं को वापस कर देते थे। आप के लिए हिन्दू और मुसलमान समान थे। आपने कभी किसी मस-जिद को नहीं तोड़ा। यदि कभी कोई क़ुरान की पुस्तक आप को मिल जाती थी, तो आप उसे सुरक्षित रखते थे और किसी

मुसलमान को ही दे देते थे। केवल ५३ वर्ष की आयु मे आपका देहावसान हो गया। इस कारण वहुत से काम आप के अधूरे रह गये, और आप के राज्य की नींव भी भली भाँति न जम पाई।

राणा प्रताप की तरह शिवाजी का नाम भी भारत के इतिहास मे स्वर्णाक्षरो मे लिखे जाने योग्य है। ये दोनो ही वीर अपने देश की स्वतन्त्रता के लिए वड़े-वड़े प्रवल शासको से लड़े। ऐसे वीर केवल एक जाति या देश की ही सम्पत्ति नही होते, वरन् समस्त मानव जाति के लिए आदरणीय होते है।

प्रश्न

१ छत्रपति शिवाजी कौन थे ?
२ दादाजी कोणदेव ने उनको कैसी शिक्षा दी ?
३ १६ वर्ष की अवस्था मे शिवाजी मे राजा होने की लालसा कैसे पैदा हो गई।
४ तोरण क़िला शिवाजी ने कव जीता ? इस क़िले को प्राप्त करके उनका उत्साह कैसे वढ़ा।
५ शिवाजी अफ़ज़ल ख़ाँ के चंगुल से कैसे वचे ?
६ शाइस्ता ख़ाँ को शिवाजी ने कैसे छकाया ?
७ शिवाजी औरंगज़ेब की क़ैद से कैसे निकल भागे ?
८ शिवाजी कव सिंहासनारूढ़ हुआ ? उनकी राजधानी कौन सी थी ?
९ उनका शासन कैसा था।
१० शिवाजी के सम्बन्ध मे कोई कविता तुम को याद हो तो सुनाओ।
११ ग़ैर-हिन्दुओ के साथ शिवाजी का कैसा वर्ताव था ?
१२ शिवाजी के जीवन से तुम्हे क्या-क्या शिक्षाएँ मिलती हैं ?

अध्याय २२

गुरु गोविन्दसिंह

(*सिक्खों के एक प्रसिद्ध गुरु*)

बालको ! प्रायः तुम सभी जानते होगे कि सिक्ख लोग कौन है ? जब भारतवर्ष मे हिन्दू और मुसलमानो के सहयोग के कारण लोगो के विचारो मे हलचल मच रही थी, उसी समय गुरु नानक नाम के एक बड़े सज्जन पुरुष ने सिक्ख सम्प्रदाय की स्थापना की। इन्होंने हिन्दू-धर्म और इस्लाम-धर्म दोनो की अच्छी-अच्छी बातो को ले कर उपदेश दिया। इन के बाद सिक्खो के १० गुरु और हुए। गुरु गोविन्दसिंह अन्तिम गुरु थे, परन्तु समय ने इन की नीति और गुरु नानक की नीति मे बहुत अन्तर कर दिया। इन्ही का वर्णन हम तुम को इस पाठ मे सुनायेंगे।

गुरु गोविन्दसिंह नवे गुरु तेगबहादुर सिंह के पुत्र थे। इन का जन्म सन १६६६ ई० मे पटने मे हुआ था। पॉच वर्ष की अवस्था तक यह पटने मे ही रहे। फिर इन के पिता इन को आनन्दपुर में, जो पंजाब प्रान्त मे था, ले आये। गुरु गोविन्द-सिंह मे बचपन से ही वीर पुरुषो के से लक्षण थे। आपके बचपन के सारे खेल वीरता से भरे हुए होते थे। खेलों मे भी आप लड़ाई लड़ते और सरदारी किया करते थे। सात साल की आयु से ही आप शिकार खेलने जाने लगे थे। इन के पिता ने इन की शिक्षा का भी अच्छा प्रबन्ध किया था। एक वीर योद्धा आपको रण-विद्या सिखाता था, और एक मुसलमान फारसी

पढ़ाता था। इस के अतिरिक्त एक पुरुष से अपनी धार्मिक पुस्तक 'ग्रन्थ साहब' अलग पढ़ते थे। गुरु गोविन्दसिंह की बुद्धि ऐसी तीक्ष्ण थी कि थोड़े ही समय में उन्होंने बहुत पढ़ डाला और बड़ी योग्यता प्राप्त कर ली।

इन्हीं दिनों में भारत में मुग़ल सम्राट् औरंगज़ेब राज्य करता था। उसने गुरु गोविन्दसिंह के पिता तेग़बहादुरसिंह को एक सेना भेज कर गिरफ़्तार कराया, और अपने दरबार में दिल्ली पकड़वा मँगाया। दिल्ली जाते समय गुरु तेग़बहादुर ने अपने पुत्र गुरु गोविन्दसिंह को गुरुपद दे कर कहा, "पुत्र! यदि मुझे मुसलमान मार डालें तो हताश मत होना, वरन् उन से बदला लेने की पूरी-पूरी कोशिश करना, और मेरी लाश को प्राप्त करके उस का मृतक-संस्कार करना, ऐसा न हो कि उसे कुत्ते-कौवे ही खा जायँ।" औरंगज़ेब ने गुरु तेगबहादुर को बहुत से प्रलोभन दिये और मुसलमान हो जाने को कहा, परन्तु उन्होंने उस की एक न मानी। अन्त में औरंगज़ेब ने उन्हें दिल्ली नगर के चाँदनी चौक में खड़ा कर के मुसलमान न होने के अपराध में क़त्ल करा दिया। गुरु गोविन्दसिंह ने अपने शिष्यों की सहायता से अपने पिता की लाश को दिल्ली से मँगवाया और उस की दाह-क्रिया आदि की।

गुरु गोविन्दसिंह अभी बालक ही थे। उन्होंने अपने पिता के मारे जाने का शोक तो न मनाया, परन्तु शत्रु से उसका बदला लेने का प्रबन्ध करने लगे। सब से प्रथम उन्होंने सिक्ख जाति में से धर्मान्धता तथा अन्ध-विश्वास को दूर किया। सारे देवी-देवताओं को हटा कर केवल एक ईश्वर की उपासना करना ही उन्होंने सब को सिखलाया। जाति-भेद के झंझट को दूर किया,

और अपने शिष्यों को शरबत (जिसे 'कड़ाह प्रसाद' भी ... ।
पिला कर उन्हे "खालसा" की उपाधि दी। छूत-छात को बिल्कुल मिटा दिया। हिन्दू लोग मुसलमानो की छुई हुई वस्तु नहीं खाते। इस कारण कभी-कभी मुसलमान युद्ध के दिनो में हिन्दुओ के भोजन की सामग्री को छू कर खाने-पीने योग्य नही रहने देते थे। गुरु गोविन्दसिंह ने उस पर कड़ा फेर कर 'वाह गुरु' के मंत्र को उच्चारण कर के उसे शुद्ध करने की युक्ति निकाली। सारांश यह है कि गुरु गोविन्दसिंह ने अपने प्रत्येक शिष्य को एक ऐसा सैनिक बनाया, जो हर समय उनके साथ लड़ने-मरने को तैयार रहे। आपने अपने शिष्यो की बड़ी-बड़ी कठिन परीक्षाऍ भी ली। जो इन परीक्षाओ मे पार उतरते थे, उन्हें ही वह अपना प्यारा शिष्य मानते और केवल उन्ही को अपने साथ रखते थे।

एक बार जब गुरु गोविन्दसिंह दरबार कर रहे थे, तो ग्रन्थ साहब पढ़ने के बाद उन्होंने कहा "आज सिक्खो की परीक्षा का दिन है। देवी बलि चाहती है।" यह कह कर गुरुजी हाथ मे तलवार ले कर देवी के स्थान पर गये, और कहा, "जो बलिदान होने को तैयार हो वह आ जाय।" पहले तो लोग झिझके, परन्तु कुछ देर बाद दयाराम नामक दिल्ली का एक सिक्ख उठ कर गया। गुरुजी ने उसे आड़ मे ले जा कर बिठा दिया और एक बकरे के खून मे तलवार रँग ली, और बाहर आकर और बलि मॉगने लगे, फिर तो एक के बाद एक कई लोग तैयार हो गये, परन्तु उन मे पहले चार मनुष्यो को ही गुरुजी ने और लिया। बस इस प्रकार परीक्षा करने के बाद उन्होने इन पाँचो वीरो की सहायता से सिक्ख-जाति को दृढ़ बनाने का यत्न किया।

सब से पहला युद्ध जो गुरु गोविन्द-सिंह जी को लड़ना पड़ा औरंगजेब के अधीन के पहाड़ी राजाओं से था। २०-२२ पहाड़ी राजाओं ने मिल कर अकेले गुरु गोविन्द-सिंह पर धावा बोल दिया। परन्तु सिक्खों ने उन सब के दाँत खट्टे कर दिये, और सब को मार भगाया। गुरु गोविन्दसिंह की विजय हुई। पहाड़ी राजा अपने किये पर

गुरु गोविन्दसिंह

बहुत पछताये, और उन्होंने गुरु जी से अपने इस कुकृत्य की क्षमा माँग ली। इसके पीछे औरंगजेब ने एक सेना पहाड़ी राजाओं से कर वसूल करने के लिए भेजी। गुरु गोविन्दसिंह ने उन राजाओं की सहायता की, और युद्ध में विजय प्राप्त की। इसके बाद भी उन्होंने कई बार मुसलमानी सेनाओं को हराया। जब यह सब हाल औरंगज़ेब को मालूम हुआ तो उसने १ लाख से ऊपर फौज आनन्दपुर को नष्ट-भ्रष्ट करने और गुरु गोविन्दसिंह को गिरफ्तार करने के लिए भेजी। इस बड़ी भारी फौज ने आकर

आनन्दपुर को घेर लिया। गुरु गोविन्दसिह अपनी थोड़ी सी फौज से ही आनन्दपुर के क़िले के भीतर अपनी रक्षा करते रहे, और शत्रु-सेना कुछ भी न कर सकी। परन्तु जब क़िले मे रसद बीत आई, तो बड़ी भारी मुसीबत का सामना हो गया। अब सिक्ख सेना सुरंग द्वारा रसद लाती और कभी-कभी मुग़ल सेना पर यकायक हमला करके उसकी रसद लूट लाती थी। परन्तु ऐसा कब तक हो सकता था! अन्त मे सिक्ख सेना ने मुसलमानी सेना पर हमले करना आरम्भ किया, जिस से मुसलमानी सेना की बड़ी हानि होने लगी और कई सहस्र सेना का नाश हो गया। मुसलमानी सेना ने भी दो बार क़िले के अन्दर घुस जाने का प्रयत्न किया, परन्तु वह असफल रही। इधर मुसलमानी सेना तो संख्या मे अधिक हो गई, परन्तु उधर सिक्ख सेना रसद बीत जाने के कारण भूखो मरने लगी। इसलिए कुछ सिक्ख सेना को क़िले को छोड़ कर भाग जाने की सूझी। गुरुजी ने इसके लिए मना किया। परन्तु उनकी माता गुजरी इससे सहमत न हुई। अन्त मे सब ने क़िले को छोड़ दिया। सिक्खो के क़िले छोड़ने पर शत्रु-सेना ने उस पर आक्रमण किया, और बहुत से सिक्ख मारे गये, तथा बहुत से जान बचा कर भाग गये। गुरु गोविन्दसिह की दोनो स्त्रियाॅ कुछ सिक्ख वीरो के साथ प्राण ले कर भागी, और दिल्ली पहुॅच कर पुरुष वेप मे अपने एक शिष्य के यहाॅ रह कर सतीत्व रक्षा करने लगी। उनकी माता अपने दो छोटे नाती जोरावरसिह और फतहसिह सहित अपने रसोइया के घर चली गई। माता गुजरी के पास कुछ पूंजी थी जिसे रसोइया ने स्वयं चुरा लिया, परन्तु खबर उड़ा दी कि चोर चुरा ले गया। यह देख कर माता गुजरी ने उससे कहा, "हमारा माल चोर नही ले गया, वह तुमने

लिया है। ख़ैर, उसे ले कर तुम फूलो फलो। परन्तु हल्ला-गुल्ला न करो। अगर किसी विपक्षी को जरा भी हमारा पता लग गया तो फिर हम जीवित न बचेंगे।" यह सुन कर रसोइया बिगड़ गया, और मुसलमान अधिकारी को सूचना दे आया कि राज्य-द्रोही गुरु गोविन्दसिंह की माता और उनके दो पुत्र मेरे यहाँ छिपने को आये हैं। फिर क्या था! तीनों प्राणी गिरफ्तार करके सरहिन्द के मुसलमान हाकिम वजीरखाँ के यहाँ भेज दिये गये, जो गुरुजी का कट्टर शत्रु था। यहाँ इन दोनों बच्चों से जिनकी आयु केवल ८ वर्ष और ६ वर्ष की थी इस्लाम-धर्म स्वीकार करने को कहा गया। परन्तु इन नन्हे से बच्चों ने अपना धर्म बदलने से साफ इन्कार कर दिया। अन्त में ये दोनों बालक मुसलमान न होने के अपराध में क़िले की दीवार में जीवित ही चुन दिये गये! माता गुजरी अपने पौत्रों का इस तरह मारा जाना सुन कर बहुत ही दुखित हुईं, और वहीं पर सिर फोड़ कर मर गईं।

इधर गुरु गोविन्दसिंह शत्रु-सेना के आक्रमणों को रोकते हुए बहुत दूर तक जंगल में पहुँच गये। इन्हीं आक्रमणों के रोकने में गुरुजी के शेष दो पुत्र अजीतसिंह और जुझाऊसिंह, जिनकी आयु १४-१५ वर्ष के लगभग थी, मारे गये। अब शत्रु-सेना पीछे थी, और गुरुजी आगे-आगे जंगलों में प्राण बचाते भूखे-प्यासे घूमते-फिरते थे। राणा प्रताप की तरह गुरु गोविन्दसिंह जी ने भी देश के लिए अनेक कष्ट सहे। एक दिन तो यहाँ तक हुआ कि आप को जंगल में प्यास सताने लगी, और पानी सौ-सौ कोस देखने तक को न था। इसलिए आपने आक के पत्तों का रस पी कर ही प्यास बुझाई। इन्हीं दिनों में जंगलों में भ्रमण करते

समय गुरु महाराज को अपनी माता के मर जाने और अपने दोनो छोटे पुत्रो के दीवार मे चुने जाने का समाचार मिला, जिसे सुन कर उन्होने ज़रा भी शोक न किया। वह तो अपने बच्चो को धर्म की वेदी पर इस प्रकार बलिदान होने पर अभिमान करने लगे। एक बार जब इन की स्त्री ने इन से कहा कि, "मेरे बच्चे कहाँ है ?" इस पर उन्होने गर्वपूर्वक उत्तर दिया कि—

इस भारत के सीस पर, चारों दीने वार।
चार मुए तो क्या हुआ, जीवित कई हज़ार॥

अन्त तक गुरु गोविन्दसिंह मुसलमानी सेना के हाथ न आये, इसलिए औरंगज़ेब ने आपको पत्र भेज कर बुलवाया। कहा जाता है कि इस मे उस ने आप के साथ अच्छा व्यवहार किये जाने का वचन दिया था। गुरुजी ने औरंगज़ेब को उस के इस पत्र का उत्तर फ़ारसी मे लिख कर भेजा कि, 'आप के द्वारा किये गये अन्यायो के कारण मुझे तलवार उठानी पड़ी है, और उनका बदला आपसे लिए बिना न रहूँगा। मुझे आप जैसे कपटी मनुष्य की शपथो पर विश्वास नहीं होता, और इसी कारण मै आप से मिलने नही आ सकता"। इसके बाद फिर दूसरा पत्र औरंगज़ेब ने अति विनीत भाव से लिखा। इसे प्राप्त करके गुरुजी का विचार उससे मिलने के लिए हो गया। इस समय औरंगज़ेब दक्षिण मे मराठो से लड़ रहा था। अतएव गुरु गोविन्दसिंह जी वहीं के लिए रवाना हुए। परंतु भेंट न हो पाई। रास्ते में ही उन्हे समाचार मिला कि औरंगज़ेब मर गया। किन्तु गुरु जी पीछे नही लौटे। व्रज-मण्डल और राजपूताने मे धर्मोपदेश देते हुए आप गोदावरी नदी के तीर तक पहुँचे। यहाँ पर आपके उपदेशों का बड़ा प्रभाव पड़ा। एक साधु को आपने सिक्ख बना

कर उसका नाम बन्दासिह रक्खा, और अपने महान् उद्देश्यो की पूर्ति के लिए उसे पंजाब भेज दिया। यह बड़ा वीर और बहादुर पुरुष था। इसने पजाब पहुँच कर गुरु के सारे शत्रुओ को मार गिराया। इसने गुरुजी के कट्टर शत्रु वजीरखाँ को परिवार सहित बड़ी बुरी तरह कष्ट दे कर मार डाला। साराश यह है कि उस ने गुरु के प्रायः सभी शत्रुओ से बदला लेने मे कसर न छोड़ी।

गुरुजी दक्षिण मे ही रहे, और वहीं पर उपदेश करने लगे। वहीं पर गुरुजी के हाथ से एक पठान मारा गया। इस कारण उस पठान के एक पुत्र ने रात मे सोते हुए गुरुजी के पेट मे कटार भोंक दी। गुरुजी ने घायल होते हुए भी उसे मार गिराया। इस कटार की चोट से गुरुजी मरे नहीं, वरन् मरहम-पट्टी हो जाने के बाद चगे हो गये। एक दिन आपने बड़े भारी धनुष पर बाण चढ़ा कर उसे ताना। इस से वह घाव जो अभी अच्छी तरह भरा नही था फूट निकला, और उसी से ४५ वर्ष की अवस्था मे गुरुजी का शरीरान्त हो गया।

गुरु गोविन्दसिह जी एक साहसी और वीर पुरुष थे, और पहले दर्जे के राजनीतिज्ञ भी थे। यदि औरंगज़ेब ने अपनी बुरी नीति का पालन न किया होता, तो सिक्ख सम्प्रदाय इस प्रकार लड़ाकू न बन गई होती।

प्रश्न

१ गुरु नानक कौन थे ?

२ गुरु गोविन्दसिंह के पिता कौन थे ?

३ गुरु गोविन्दसिंह को कैसी शिक्षा दी गई थी ?

४ औरङ्गज़ेब ने गुरु तेगबहादुर सिंह के साथ कैसा बर्ताव किया ?

५ गुरु गोविन्दसिंह ने सिक्खों के नियमों में क्या क्या परिवर्तन कर दिये ?

६ गुरु जी मुग़लों से क्यों लड़े ? इन लड़ाइयों का क्या फल हुआ ?

७ गुरुजी के दोनों बच्चे दीवार में क्यों चुनवा दिये गये ?

८ बन्दासिंह के विषय में तुम क्या जानते हो ?

९ गुरु गोविन्दसिंह का परलोकवास कैसे हुआ ?

१० गुरु गोविन्दसिंह के जीवन से तुमको क्या शिक्षा मिलती है ?
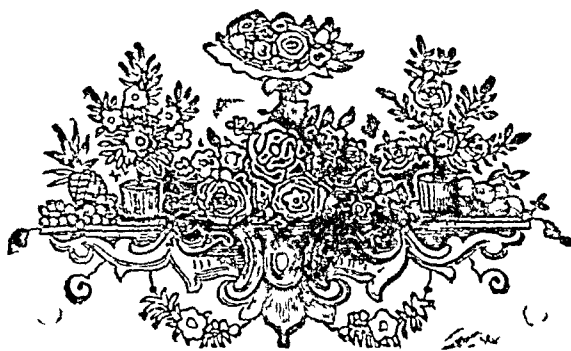
अध्याय २३

महाराजा रणजीतसिंह

(एक प्रतापी सिक्ख राजा)

बालको ! शायद तुम ने महाराज रणजीतसिंह का नाम सुना हो। यह हिन्दू-जाति के सब से अन्तिम स्वाधीन शूरवीर राजा थे, जो "पंजाब केशरी" के नाम से आज तक प्रसिद्ध है। इस पाठ मे हम इन्ही के जीवन का कुछ हाल तुम को बतायेगे।

रणजीतसिंह

महाराज रणजीतसिह के पिता का नाम महासिह था, जो कोई राजा न थे। इस समय मे पंजाब के छोटे-छोटे राज्यो को 'मिसल' कहते थे, जिन मे सिक्ख और मुसलमान सरदार राज्य करते थे। महासिह इन्ही मिसलो मे से एक के सरदार थे। एक समय जब सरदार महासिह रसूलनगर के एक मुसलमान सरदार पर चढ़ाई कर रहे थे, तो इन को एक सैनिक ने उन को पुत्र उत्पन्न होने की सूचना दी। महासिह अति प्रसन्न हुए और उन्होने उसी समय भविष्यवाणी की कि, "यह लड़का रण के समय मे पैदा हुआ है, इसलिए अत्यन्त

शूरवीर और प्रतापी होगा, और युद्ध मे सदा शत्रुओ के दाँत खट्टे करेगा।" रण के समय मे ही जन्म होने के कारण इस बालक का नाम 'रणजीत' रक्खा गया।

जब बालक रणजीतसिंह दस वर्ष के हुए तो इन के पिता का देहान्त हो गया, और इसी से शिक्षा का कोई प्रबन्ध न होने के कारण यह कुछ पढ़-लिख न सके। परन्तु यह थे बड़े बुद्धिमान और चतुर। केवल २० ही वर्ष की आयु मे सारे सिक्ख 'मिसलो' और अफगान सूबो को अपने अधीन करके समस्त पंजाब देश के राजा हो गये। इस समय सिक्खो के १२ समुदाय थे, और इन में मेल न था। रणजीतसिंह ने इन सब को मिला कर एक दृढ़ राज्य बना लिया। इस प्रकार अपनी शक्ति बढ़ा कर इन्होने अन्य देशो को जीतना आरम्भ कर दिया। अटक, मुल्तान, कश्मीर राज्यो को तो इन्होने थोड़े ही परिश्रम से जीत लिया, और पठानो को युद्ध मे हरा कर पेशावर को भी अपने राज्य मे मिला लिया। इस तरह इन का राज्य पंजाब के अतिरिक्त उसके चारो ओर सीमान्तर देशो पर भी था।

महाराज रणजीतसिंह इतने बड़े राजा होते हुए भी अत्यन्त सादा वेष मे रहते थे। यह डीलडौल के छोटे थे, और इन की एक आँख चेचक मे जाती रही थी। चेहरा कुरूप था, परंतु उससे इतना तेज और वीरता टपकती थी कि किसी मनुष्य की उनके चेहरे की ओर देखने की हिम्मत नहीं होती थी। एक वार जब महाराज का दूत लार्ड विलियम बेटिक के पास कुछ सँदेशा ले कर पहुँचा, तो वहाँ एक अँगरेज़ ने उस से पूछा, "तुम्हारे महाराज किस आँख के काने हैं?" इस पर उस ने उत्तर दिया, "यद्यपि मेरी सारी आयु महाराज की सेवा मे ही बीती है, परन्तु

मै आपकी वात का उत्तर नहीं दे सकता, क्यो कि उन के चेहरे पर इतना तेज है कि आज तक मेरी हिम्मत उस की ओर देखने की नहीं हुई।" महाराज को घोड़े की सवारी का वड़ा चाव था, और अपनी फ़ौज को क़वायद सिखाने का भी बडा शौक था। इन्होने अपनी सेना को क़वायद सिखाने के लिए कई योरुपीय मनुष्य नौकर रख छोड़े थे। यह सैनिको के साथ स्वयं भी क़वायद करते थे। अपने यहाँ योरुपीय अफ़सरो को तीन विशेष शर्तों पर यह नौकर रखते थे—(१) कोई गो-मांस न खा सकेगा, (२) दाढ़ी-मूछ न मुडा सकेगा, और (३) तम्बाकू का प्रयोग न कर सकेगा। रणजीतसिह दानी भी वड़े भारी थे, और हिन्दू-मुसलमानो का भेद-भाव छोड़ कर सभी को दान देते थे। प्रसिद्ध है कि एक वार एक साधु आपके पास आया, और उस ने अपना योगसाधन दिखाने के लिए महाराज से प्रार्थना की। महाराज ने उस को उस के कहने के अनुसार ही सदूक़ मे वन्द करके एक कोठरी मे ताला डाल कर रखवा दिया। चालीस दिन पीछे महाराज ने उस कोठरी मे से सदूक़ निकलवा कर खुलवाई, तो उस साधु को ज्यो की त्यो योग-साधन किये हुए पाया। गरम वस्तु का स्पर्श करा कर उसकी मूर्छा दूर की गई, और होठो से घी मलवा कर उसका मुँह खोला गया। महाराज ने उस साधु को वहुत सा धन और एक सोने का हार भेट किया।

महाराज रणजीतसिह के हिन्दू रानियो के अतिरिक्त दो मुसलमान रानियाँ भी थी। महाराज को आदमियो की वडी परख थी, और वह पूरे राजनीतिज्ञ थे। अकबर, हैदरअली, महादाजी सिंधिया और शिवाजी की तरह आपने भी कुछ पढ़ा-लिखा हुआ न होने पर भी राज्य-शासन बड़ी योग्यता से किया,

और दिन पर दिन उसे उन्नत करते गये। आपका पत्र-व्यवहार राज्य के सम्बन्ध में रूस और फ्रांस जैसे शक्तिशाली व दूरवर्ती देशो से था। फिर आप की इच्छा हुई कि पूर्व से हमारे राज्य की सीमा यदि जमुना नदी रहे तो अच्छा हो। इसी विचार से आपने सतलज नदी के पार उतर कर अपनी सेनाएँ इकट्ठी की। इस समय मे भारतवर्ष मे अग्रेज़ एक शक्तिशाली शासक हो गये थे। लार्ड मिण्टो ने जो उस समय यहाँ गवर्नर-जनरल थे, अपना एक आदमी भेज कर महाराज से ऐसा करने के लिए मना कहला भेजा। महाराज ने इस बात को मान लिया और अंग्रेजो से सन्धि कर ली। यह सन्धि-पत्र जो अँग्रेज़ो और रणजीतसिह के बीच मे लिखा गया केवल १५ पंक्ति का था। इतना छोटा सन्धि-पत्र कभी किन्ही दो राजाओ के बीच नहीं लिखा गया।

पेशावर को अपने अधिकार मे कर लेने के पश्चात् आपने अफ़ग़ानिस्तान पर भी चढ़ाई की, और कई लड़ाइयो मे अफ़ग़ानो को बुरी तरह हराया। इनकी सेना में हरीसिह नलवा नाम का एक सेनापति था, जिस ने इन के साथ अफ़ग़ानिस्तान की लड़ाइयो में विशेष भाग लिया था, और अफ़ग़ानो को बुरी तरह पराजित किया था। इसी हरीसिंह नलवा की धाक आज तक अफ़ग़ानियो पर जमी हुई है। उन की स्त्रियाँ अब भी अपने बच्चो को 'हीरा' (जो हरीसिह नलवा का छोटा नाम था) कह कर डराया करती है। महाराज रणजीतसिह की उन के राज्य के अतिरिक्त चारो ओर के देशो मे भी धाक जमी हुई थी। सभी इनको पंजाब-केशरी, अर्थात् पंजाब का सिंह मानते थे। अफ़ग़ान और पठान इन से बुरी तरह मुँह की खाये हुए थे। इस कारण

इन के जानी दुश्मन वे ही लोग थे, और इन्हे मार डालने की घात मे भी रहते थे। एक दिन जब यह सध्या समय शिकार खेल कर घोड़े पर चढ़े हुए लौट रहे थे, तो हिम्मत खाँ नाम के एक मुसलमान ने इन को मार डालने की हिम्मत की। उस ने अकस्मात् पीछे से वार किया। परन्तु महाराज बच गये, और फिर उन्होंने एक तलवार के हाथ मे उसका काम तमाम कर दिया। इस से मुसलमान इतने डर गये कि फिर किसी ने भी इन पर वार करने का साहस न किया।

संसार का सर्वोत्तम रत्न कोहनूर भी रणजीतसिह के पास था। कहा जाता है कि यह रत्न गोलकुण्डा की खान से निकला था, और सहस्रो वर्ष तक हिन्दू राजाओ के पास रहा। फिर यह मुगलो के हाथ आया। उन से नादिरखाँ छीन कर फ़ारस ले गया था। तत्पश्चात् यह काबुल मे रहा। रणजीतसिह को काबुल के बादशाह शाहशुजा से हाथ लगा था। जब शाहशुजा पंजाब-केशरी से हार गया, तो उन्होने उसे परिवार सहित नज़रबन्द कर लिया और कोहनूर माँगा। परन्तु शाहशुजा कोहनूर को देना नही चाहता था, इसलिए अनेक बहाने बनाने लगा। इसके लिए महाराज ने शाहशुजा को कुछ यातनाएँ भी दी। प्रसिद्ध है कि जब शाहशुजा को बहुत प्यास लगी, तो एक चुल्लू भर पानी के बदले मे उसने इस अमूल्य रत्न कोहनूर को दे दिया। यह संसार प्रसिद्ध हीरा बहुत ही अधिक मूल्य का बताया जाता है। आजकल यह राजराजेश्वर महाराज पंचम जार्ज के पास है।

महाराज रणजीतसिह का राज्य-शासन उत्तम था। प्रजा के सुख का उन को सदा ध्यान रहता था। उस के दुःखो को दूर करना वह अपना परम कर्त्तव्य समझते थे। आप ने अपने महल मे

एक सन्दूक छेद करा कर के रख छोड़ा था। कोई भी मनुष्य अपना सुख-दुख कागज़ पर लिख कर इस सन्दूक मे छोड़ कर महाराज तक अपनी पुकार पहुँचा सकता था। प्राचीन हिन्दू राजाओं की भाँति महाराज रणजीतसिंह भी रात मे वेष बदल कर प्रजा की दशा (दुख-सुखो) का पता लिया करते थे, और उन्हें दूर करने का भरसक प्रयत्न करते थे। एक रात को जब महाराज इसी प्रकार वेष बदल कर बाहर गये हुए थे, तो ख़ुशहाल सिंह नामक चौकीदार ने जो इनके महल की ड्योढ़ी पर पहरा दे रहा था, इन्हें रात के समय महल में नहीं घुसने दिया और रात भर हिरासत में रक्खा। महाराज इस से उस चौकीदार से बहुत प्रसन्न हुए, और उसे चौकीदारी से हटा कर अच्छे पद पर नियत कर दिया।

महाराज रणजीतसिंह की दिनचर्य्या इस प्रकार थी। वह नित्य सवेरे टहलने जाते थे, और टहल कर लौट आने के पश्चात् ८ बजे ही भोजन कर लेते थे। इसके पीछे दरबार करते थे, और प्रजा की प्रार्थनाओं पर विचार करते थे। दरबार कर के थोड़ी देर विश्राम करते थे। तदुपरान्त वह अपने गुरु से अपनी धर्म-पुस्तक 'ग्रन्थ साहब' सुनते थे। शाम को थोड़ी देर राज-काज करने के पश्चात् शिकार खेलने जाते थे। रात का भी बहुत सा समय प्रजा के हित के लिए बिता कर सोते थे। इनकी प्रजा इनसे बहुत प्रसन्न थी, और प्रजा को भी इनके प्रति बहुत ही श्रद्धा थी। इनके जीते जी किसी की भी हिम्मत न हुई कि इनके राज्य पर चढ़ाई करे, या इनसे बैर बाँध कर लड़ाई मोल ले।

आज से क़रीब सौ वर्ष हुए हिन्दू-जाति का यह अन्तिम स्वाधीन राजा परलोकवासी हो गया। कहा जाता है नशा अधिक

करने से इनका स्वास्थ्य ख़राब हो गया था। इनके मरने पर एक करोड़ रुपये का दान हुआ, जो मन्दिरों, मसजिदो साधुओं, फकीरो और धर्मशालाओ में बाँट दिया गया। इनकी समाधि लाहौर के क़िले के पास बनी हुई है। मृत्यु के पीछे इन का एक-मात्र पुत्र कुँवर दलीपसिह राज्य का उत्तराधिकारी हुआ।

प्रश्न

१—महाराज रणजीतसिह के पिता कौन थे?

२—'मिसल' किसे कहते है?

३—महाराज रणजीतसिंह का यह नाम क्यों पडा?

४—२० वर्ष की ही अवस्था मे रणजीतसिह ने राज्य का कितना विस्तार कर लिया था?

५—यूरोपिय नौकरो को ये किन शर्तों पर रखते थे?

६—ऐसी एक कहानी सुनाओ जिससे यह सिद्ध होता हो कि रणजीतसिंह दयावान और दानी थे?

७—अँगरेज़ो के साथ इनका कैसा बर्ताव रहा?

८—हरीसिंह नलवा कौन था?

९—हिम्मतख़ाँ कौन था? वह महाराज को क्यो मारना चाहता था?

१०—रणजीतसिह को कोहनूर हीरा कैसे मिला? आजकल वह हीरा कहाँ है?

११—सिद्ध करो कि महाराज रणजीतसिंह अच्छे शासक थे।

१२—रणजीतसिंह की दिनचर्य्या बताओ।
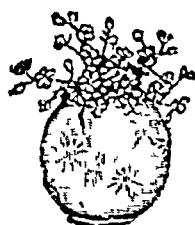
अध्याय २४

राजा राममोहन राय

(वर्तमान युग का एक प्रसिद्ध सुधारक)

बालको ! हम तुम को इस पाठ मे ऐसे महापुरुष का जीवन-चरित्र बतलायेगे, जो बड़े दृढ़ विचार वाले और प्रतिभाशाली विद्वान थे, और जिन्होने अपने समाज-सेवा के कार्यों द्वारा प्रत्येक भारतवासी के हृदय में बहुत जगह कर ली थी, और इसी लिए जिनका नाम आज तक बड़ी श्रद्धा तथा आदर के साथ लिया जाता है।

राजा राममोहन राय

राम मोहन राय का जन्म एक ब्राह्मण कुल मे हुआ था। उनके पिता रमाकान्त एक मामूली ज़मीदार थे, और मुर्शिदाबाद के नवाब के यहाँ नौकर थे। वह वैष्णव धर्म के मानने वाले थे और उनकी माता तारिनी देवी शाक्त थी, अर्थात् शक्ति या देवी की उपासक थीं।

बालक राम मोहन-राय जब पढ़ने योग्य हुए, तो उन्हे उनकी मातृ-भाषा बँगला का अध्ययन कराया गया। यद्यपि उनका विवाह १० वर्ष की ही अवस्था मे

एक छोटी सी बालिका से कर दिया गया था, परन्तु कुछ ही काल पीछे उस का देहान्त हो गया। उन्हे विद्या से बड़ी रुचि थी। १२ वर्ष की अवस्था मे ही वह फारसी व अरबी पढ़ने के लिए पटना भेजे गये। उस समय इन भाषाओं का ज्ञान बहुत आवश्यक समझा जाता था, क्योकि राजकीय भाषा मुगलों के समय से फारसी ही चली आती थी। १४ वर्ष की अवस्था में वह बनारस भेजे गये। यहाँ तीन वर्ष रह कर उन्होने संस्कृत भाषा का अध्ययन किया। वह शीघ्र ही वेद तथा उपनिषद् जैसे कठिन ग्रन्थो को साधारण रीति से समझने लग गये। प्राचीन हिन्दू ग्रन्थो को पढ़ कर उनके विचारो मे क्रान्ति पैदा होने लग गई। उन्होने देखा कि इन ग्रन्थो में उन बहुत सी प्रथाओ का वर्णन नही है, जो हिन्दू-समाज मे उस समय प्रचलित थी। इसलिए उनके हृदय मे अनेक प्रकार की उथल-पुथल मचने लगी। हिन्दू-धर्म के आडम्बरो से तो उनका चित्त बिल्कुल ही हट गया। जब वह घर लौटे तो माता-पिता से कलह होने लगा। यह स्वाभाविक ही था, क्योकि बालक राममोहन के विचार अपने माता-पिता के विचारो से नही मिलने लगे, जो पुराने ढंग के कट्टर हिन्दू थे और जो अपने विचारो को किसी भी प्रकार नहीं बदलना चाहते थे। मुसलमान और हिन्दू दोनो के धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन के द्वारा राम मोहन को विश्वास हो गया था कि मूर्ति-पूजा पाखण्ड है। वह मूर्ति-पूजा का खुल्लमखुल्ला खण्डन करने लगे। इससे उनके माता-पिता और भी रुष्ट हुए। अन्त मे इनको अपना घर छोड़ देना पड़ा, क्योकि उन्हे अपनी आन छोड़ना स्वीकार न था। सत्य की खोज मे वह इधर-उधर घर छोड़ने के बाद घूमते रहे। इसी बीच मे एक बार वह १,००० मील की पैदल यात्रा करके तिब्बत भी गये। वहाँ उन्होने

बौद्ध-धर्म का अध्ययन किया, और अनेक बौद्ध साधुओं से उन्होने वाद विवाद किया। इससे वे लोग इतने रुष्ट हुए कि एक बार राम मोहन का जीवन तक संकट में पड़ गया था। चार वर्ष बाद उनका अपने पिता से मेल हो गया। भला माता-पिता का मोह अपनी संतान से कब छूट सकता है। वह घर लौट आये, और उन्होने अँग्रेज़ी पढ़ना आरम्भ किया। कुछ काल में ही वह इस भाषा के भी विद्वान् हो गये। साथ ही साथ उन्होने हेब्रू, लेटिन, यूनानी आदि भाषाओ का भी अध्ययन किया। इन भाषाओ के अध्ययन से उनके विचारो में और भी उदारता तथा स्वतंत्रता आ गई।

अपने पिता के देहान्त के दो वर्ष पीछे उन्होने ईस्ट इण्डिया कम्पनी मे नौकरी कर ली, और यहाँ उन्होने ६ वर्ष नौकरी कर के छोड़ दी। इस समय उनकी अवस्था ४० वर्ष की थी। इसी बीच मे उन्होने एक ज़मीदारी खरीद ली, और फिर कलकत्ते में एक मकान मोल ले लिया और नौकरी छोड़ने पर वह वही रहने लगे।

वह २० वर्ष और जीवित रहे। यह समय उनका घोर परिश्रम करने मे व्यतीत हुआ। उन्होने बहुत सा समय 'सती' और 'बहु-विवाह प्रथा' को रोकने के प्रयत्न में व्यतीत किया। प्राचीन काल में यह रिवाज था कि यदि किसी हिन्दू स्त्री का पति मर जाता था, तो उसकी विधवा स्त्री भी उसी के साथ चिता पर जीवित जल जाती थी। कुछ स्त्रियाँ तो अपनी इच्छा से ही ऐसा करती थी, परन्तु बहुत सी स्त्रियो को इच्छा न होते हुए भी लोक-निन्दा के कारण विवश हो कर ऐसा करना पड़ता था। राम मोहन ने अपनी विधवा भावज के सती होने का भयानक दृश्य

अपनी आँखो से देखा। वह अपने पति के शव के साथ धधकती हुई चिता पर बैठ गई। पर जब आग की लपटे उसके शरीर पर लगी, तो उसने भागने का प्रयत्न किया। परन्तु लोगो ने लम्बी लाठियो द्वारा उसे चिता से न उठने दियां, और जब वह फूट-फूट कर रोने लगी, तो ढोल तथा अन्य बाजे इतनी ज़ोर से बजाये गये कि उसकी चीत्कार उनकी ध्वनि मे न सुनाई देने लगी। बात की बात मे वह अभागिनी जल कर राख हो गई। इस बीभत्स
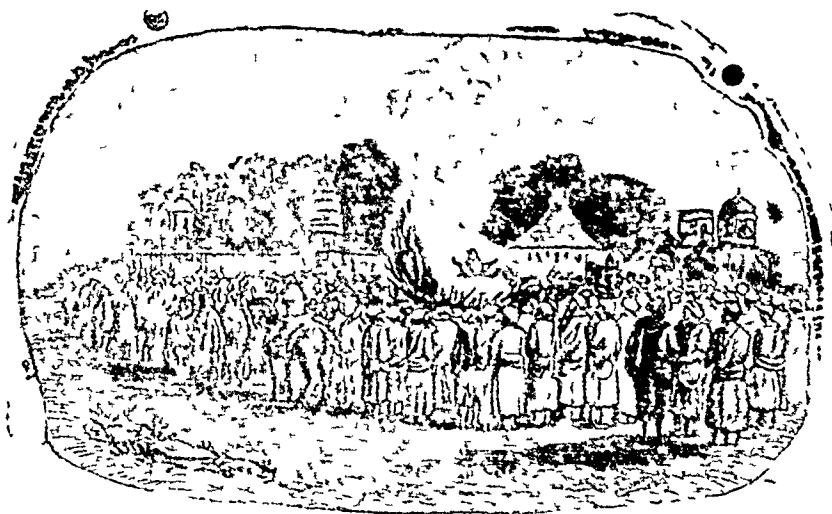
सती

दृश्य को देख कर राम मोहन राय के रोंगटे खडे हो गये, और उन्होने इस प्रथा को रोकने का दृढ़ संकल्प कर लिया। उनको अपने जीवन काल मे इस मामले मे कोई विशेष सफलता नही हुई, परन्तु यह उनके परिश्रम का ही फल था कि उनकी मृत्यु के पीछे भारत के बड़े लाट लार्ड विलियम बैण्टिङ्क ने इस अमानुषिक प्रथा के रोकने के लिए एक क़ानून बना दिया।

उस काल के हिन्दुओ मे यह भी प्रथा थी कि एक मनुष्य दो स्त्रियो से विवाह कर सकता था। प्राचीन काल के हिन्दुओं मे यह प्रथा प्रचलित नही थी, इसलिए इसको रोकने के लिए भी राम मोहन राय ने घोर प्रयत्न किया। उन्ही के प्रयत्न का फल है कि आज हम यह देखते है कि अब यह बुरा रिवाज हिन्दू-समाज से उठ गया है।

इन कार्यो के अतिरिक्त राम मोहन राय ने और भी अनेक सामाजिक सेवाएँ की। वह विधवा-विवाह के पक्ष मे थे, और जाति-बन्धन के विरोधी थे। उन्होने भारतीय स्त्रियो को शिक्षा देने के सम्बन्ध मे भी बड़ा परिश्रम किया। इस में उन को विशेष रुचि थी। उनकी मृत्यु के कुछ समय पीछे लड़कियों के लिए कलकत्ते मे एक स्कूल खोला गया, जो शीघ्र ही कालेज कर दिया गया। सामाजिक व धार्मिक सुधार के लिए उन्होने घोर परिश्रम किया। उन्होने अनेक व्याख्यान दिये और कई पुस्तके लिखी। उन का बहुत सा धन पुस्तक प्रकाशन मे ही व्यय हो गया, क्योकि वह अपनी लिखी हुई पुस्तके जनता मे मुफ़्त बॉटते थे। उन का मत यह था कि हम लोगो को योरुप वालो से बहुत कुछ सीखना है, किन्तु हमे अपनी सभ्यता को नही छोड़ना चाहिए। उन की जाति, धर्म, देश और समाज की सेवा से ब्रिटिश सरकार सदा प्रसन्न रही। 'राजा' की उपाधि उन को मुग़ल सम्राट् द्वितीय अकबर ने दी थी।

नौकरी छोड़ने के कुछ ही दिन पीछे राम मोहन ने उपनिषदो के आधार पर एक नये पन्थ की स्थापना की, जिसे 'ब्रह्म-समाज' कहते है। ब्रह्म समाज का अर्थ यह है कि वह समाज जिसमें एक 'ब्रह्म' या ईश्वर को माना जाय। ब्रह्म-समाज के खोलने से

पहले उन्होंने 'आत्मीय-सभा' खोली थी। इसमे हिन्दुओ के धार्मिक ग्रन्थो की कड़ी आलोचना की जाती थी, और उनका शुद्ध अर्थ समझाने का प्रयत्न किया जाता था। यहाँ पर सारे आडम्बर छोड़ कर सीधे-सादे ढंग से भगवान् की प्रार्थना की जाती थी। इसी के द्वारा हिन्दू-धर्म के ठेकेदारो अर्थात् पुजारियो का भण्डाफोड़ हो गया, और उनकी पोल खुल गई। ब्रह्म-समाज के अनुयायी भारत मे आज तक भी पाये जाते है। ये लोग एक ईश्वर की उपासना करते है और मूर्त्ति-पूजा नही करते। ये सभी धर्मो को आदर की दृष्टि से देखते है, और वेद, उपनिषद्, कुरान इञ्जील आदि सभी ग्रंथो को पवित्र मानते है। इस मत पर चलने वाले सभी एक दूसरे को अपना भाई समझते है।

राजा राम मोहन राय के समय मे बंगाल मे ईसाई-धर्म का प्रचार बड़े ज़ोरो से हो रहा था। उनको यह बात बहुत खटकी क्योकि ईसाई-धर्म प्रायः वे लोग अंगीकार कर लेते थे, जो अपने धर्म से बिल्कुल अनभिज्ञ होते थे। ब्रह्म समाज के खुल जाने से अनेक मनुष्य ईसाई होने से बच गये, और इस प्रकार राम मोहन ने हिन्दू-धर्म की बहुत सेवा की।

राजा राम मोहन राय अँग्रेजी भाषा के पक्ष मे बहुत थे, क्योकि उस काल मे देशी भाषाओ की दशा बड़ी शोचनीय थी और अँग्रेजी भाषा बहुत उन्नत थी। इसलिए उन्होंने भारत-सरकार से प्रार्थना की कि भारतीयो को अंग्रेज़ी भाषा द्वारा ही शिक्षा दी जाय। इससे भारत-सरकार के सचिव लार्ड मॉर्ले को बड़ी सहायता मिली, और तभी से अँग्रेज़ी भाषा का प्रचार स्कूलो मे कर दिया गया। राजा राम मोहनराय को उस समय यह ध्यान न आया कि उनके इस कार्य का कैसा फल होगा।

हम आज देखते हैं कि उनके इस काम से हमारी कितनी हानि हुई है, और देशी भाषाए कितनी पिछड़ गई हैं।

५६ वर्ष की अवस्था में राजा राम मोहन ने विलायत की यात्रा की। इस यात्रा के दो कारण थे। एक तो ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारियो ने कुछ आवश्यक विषयों में उनकी सम्मति लेने के लिए उन्हे इंगलेण्ड बुलाया था। दूसरे, मुग़ल-सम्राट् ने कुछ सँदेशा उनके द्वारा ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकारी-वर्ग को भेजा था, क्योकि उसकी दशा इस समय बहुत शोचनीय हो गई थी। उनकी विलायत यात्रा का एक बड़ा फल हुआ। हिन्दुओं में कुछ काल से यह समझा जाने लगा था कि समुद्र यात्रा करने से जाति-भ्रष्ट हो जाती है। इसी से हिन्दू कूप मण्डूक बन गये थे। परन्तु राजा राम मोहन राय ने स्वयं विलायत जा कर इस विचार का अन्त कर दिया। विलायत मे प्रत्येक मनुष्य इन से मिल कर बड़ा प्रसन्न हुआ। परन्तु वहाँ उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया, और तीन वर्ष पीछे वहीं परलोकवास हो गया।

राजा राम मोहन राय का शरीर इँगलेड मे ही रह गया। परन्तु इनकी आत्मा अब भी भारतवर्ष मे है। ऐसे परिश्रमी, विचारशील निर्भीक और स्वावलम्बी पुरुष संसार मे बहुत थोड़े पाये जाते है। धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक और शिक्षा-सम्बन्धी जो कार्य उन्होने किये उन के द्वारा उनकी कीर्ति सदा के लिए अमर हो गई है। इन को "भारत की सुबह का सितारा" कहते है।

प्रश्न

१ राजा राम मोहन राय के पिता कौन थे ?

२ बालक राम मोहन राय की शिक्षा किस प्रकार हुई ?

३ शिक्षा के बाद राम मोहन राय के विचारों में क्या अन्तर हो गया था ?
४ राम मोहन राय ने तिब्बत-यात्रा क्यों की थी ?
५ उन्होंने अपने अन्तिम २० वर्ष किस प्रकार विताये ?
६ 'सती' और 'बहुविवाह' प्रथाओं से तुम क्या समझते हो ? इनको बन्द करने में राम मोहन राय ने क्या उद्योग किया ? क्या इन को इस काम में सफलता मिली ?
७ राम मोहन राय को 'राजा' की उपाधि कैसे मिली ?
८ 'ब्रह्म समाज' से तुम क्या समझते हो ? इस से हिन्दू जाति को क्या लाभ हुआ ?
९ राजा राम मोहन राय ने भारतीय स्कूलों में अँगरेजी द्वारा शिक्षा दिलाना क्यों अच्छा समझा ? इस कार्य से क्या फल निकला ?
१० राजा राम मोहन राय इँगलैंड क्यों गये ? उनके ऐसा करने से हिन्दू-समाज पर क्या प्रभाव पड़ा ?

अध्याय २५

सर सैयद अहमद ख़ाँ

(एक देशभक्त और जाति सेवक नेता)

वर्तमान काल मे भारत में जितने प्रसिद्ध मुसलमान नेता हुए है उनमें सर सैयद अहमद ख़ॉ का नाम सब से ऊँचा है। सर सैयद का जन्म लगभग १०० वर्ष हुए देहली मे हुआ था। उनके दादा मुग़ल सम्राट् आलमगीर द्वितीय के दरबारियो में से एक थे। उनके पिता युवावस्था मे ही परलोकवासी हुए, और उन्होने सैयद अहमद को बहुत छोटा ही छोड़ा। बालक सैयद अहमद के पालन-पोषण व शिक्षा का भार उनकी माता पर ही पड़ा। कहने की आवश्यकता नहीं कि उस योग्य माता ने उनको बहुत उत्तम शिक्षा दी। सैयद अहमद शीघ्र ही अरबी और फारसी के विद्वान् हो गये। इन के अतिरिक्त और विषयों मे भी उनको शिक्षा दी गई। २२ वर्ष की अवस्था होने पर सैयद अहमद सर राबर्ट हेमिल्टन के नायब मुंशी नियत हुए, जो उस समय आगरे के कमिश्नर थे और बाद को इन्दौर राज्य में रेज़ीडेण्ट नियत करके भेजे गये। दो वर्ष पीछे वह मैनपुरी में मुंसिफ़ नियत हुए। पॉच वर्ष पीछे उनकी बदली सदर अमीन के पद पर देहली कर दी गई। यहाँ रह कर उन्होने 'देहली का इतिहास' नामक एक सुन्दर पुस्तक लिखी।

फिर सैयद अहमद बिजनौर चले गये। सन् १८५७ के सिपाही-विद्रोह में उन्होने यहां अनेक अगरेजो की जानें बचाईं।

इस कार्य मे उन्हं ने बड़ी ही सावधानी और योग्यता से काम किया। जब बिजनौर का नवाब और वहाँ के सारे ही सिपाही अँग्रेज़ो के विरुद्ध हो गये थे और उनके प्राण संकट मे पड गये थे, तो सैयद अहमद नवाब के पास गये और वहाँ नवाब तथा अँग्रेज़ो के बीच ऐसा दस्तावेज़ लिखवाया, जिसका अर्थ बहुत स्पष्ट न था और जो विशेष तौर से अंग्रेज़ो के ही पक्ष मे था। नवाब ने उसे अपने पक्ष मे समझ कर अंग्रेज़ो को वहाँ से कुशलतापूर्वक चले जाने का प्रबन्ध कर दिया। इस उपकार को ब्रिटिश सरकार ने कभी नहीं भूला, और सदा उनका बड़ा आदर करती रही। अगले वर्ष उन्होने विद्रोह के कारणो पर एक पुस्तक उर्दू मे लिखी, जिसका पीछे से अँगरेज़ी अनुवाद भी किया। इस मे उन्होने वड़ी योग्यता से उन सारे दोषो का उत्तर दिया, जो विद्रोह के संबंध मे योरोपीय लेखको ने हिन्दुस्तान के सिर मढ़े थे। उन्होने विद्रोह का मुख्य कारण यह बतलाया कि भारतीयो को अपने देश के शासन मे भाग नहीं दिया जाता है। उनको शिक्षा देनी चाहिए, और लेजिस्लेटिव कौंसिल मे अवश्य स्थान मिलना चाहिए। सन् १८६२ ई० मे वह ग़ाज़ीपुर भेजे गये। वहाँ उन्होने 'विज्ञान परिषद्' नामक संस्था की स्थापना की। इस परिषद् का उद्देश्य अँगरेज़ी ग्रन्थो के उर्दू अनुवाद प्रकाशित करना था। सात वर्ष पीछे वह अपने पुत्र के साथ इंग्लैण्ड चले गये। आक्सफ़ोर्ड व केम्ब्रिज के प्रसिद्ध कालिजो की तरह भारत मे भी एक कालिज स्थापित करने का विचार प्रथम बार उन्होने इसी समय किया। वह अँग्रेज़ो के जीवन की बड़ी प्रशंसा करने लग गये थे। भारत मे लौट कर उन्होने 'समाज-सुधार' नामक एक पत्र प्रकाशित किया, जिस का उद्देश्य था मुसलमान-जाति मे

समाज सुधार के लिए आन्दोलन करना। उन्होंने कई इस्लामी प्रथाओं की बड़ी ज़ोरदार भाषा में निन्दा की। फल यह हुआ कि मुल्ला और मौलवी एक-दम बिगड़ खड़े हुए, और उनको 'काफ़िर' कहने लगे। कहा जाता है कि उन्होने यहाँ तक कह डाला कि यदि सैयद अहमद को मार डाला जाय, तो यह प्रशंसनीय कार्य होगा। परन्तु सैयद अहमद चुपचाप अपना कार्य बड़ी निर्भीकता से करते रहे। सच तो यह है कि पुरानो बाते, चाहे वे कितनी ही बुरी हो, बड़ी देर में छूटती हैं। इसलिए सुधारक का कार्य बड़ा नाजुक होता है। उसे क़दम फूँक-फूँक कर और साथ ही साथ बड़ी हिम्मत के साथ आगे बढ़ना पड़ता है। सैयद अहमद मुसलमानों की लड़कियों को शिक्षा देने के पक्ष मे थे, परन्तु स्कूलो मे नहीं। वह मुसलमानों और योरुप वालो में परस्पर विवाह किये जाने के भी विरुद्ध थे।

सन् १८७६ ई० मे उन्होंने सरकारी नौकरी से पेंशन ले ली। अब उन्होने सारी शक्तियाँ अलीगढ़ मे एक बड़ा मुस्लिम कालिज स्थापित करने मे लगा दीं। इस के लिए उन्होने बहुत सा धन एकत्रित किया और रात-दिन घोर परिश्रम किया। इस कार्य मे उन को अपने पुत्र जस्टिस महमूद से भी बहुत सहायता मिली। उन्हीं के अविरल परिश्रम का फल है कि उनके द्वारा स्थापित 'ऐंग्लो-ओरियण्टल मुहमडन कालिज' आज 'मुस्लिम विश्वविद्यालय' के रूप में हो गया है, और आज दिन उसमें २,५०० से अधिक विद्यार्थी शिक्षा पा रहे हैं। सैयद अहमद द्वारा स्थापित कालिज में दो विशेषताएँ थीं—एक तो धार्मिक शिक्षा देना और दूसरे सब परीक्षार्थियों का बोर्डिङ्ग हाउस (छात्राश्रम) में रहना। सन् १८७७ ई० में भारत के बड़े लाट लार्ड लिटन ने इस कालिज की नीव डाली।

सैयद अहमद का गवर्नमेण्ट ने भी बहुत सम्मान किया। इङ्गलेण्ड मे उन को महारानी विक्टोरिया से मिलाया गया। उन को सी. एस. आई की उपाधि भी दी गई। सन् १८७८ में वह संयुक्त प्रान्त की लेजिस्लेटिव कौंसिल के सभासद् बनाये गये, और फिर भारत की लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य बनाये गये। उन्होने चेचक के क़ानून के पास होने मे बड़ा योग दिया।

सर सय्यद अहमद ख़ां

परन्तु उन्होने स्वराज्य-सम्बन्धी एक बिल का घोर विरोध किया, जिस से उन्होने हिन्दुओ को नाराज़ कर दिया। सन् १८८१ ई० मे सरकार ने उनको के सी एस. आई की उपाधि से विभूषित किया।

सन् १८८६ मे 'मुसलमान शिक्षा-परिषद्' (मुहमडन ऐजूकेशनल कानफरेन्स) स्थापित की, जिस की बैठके आज दिन तक बड़े समारोह के साथ होती रही है और जिस के द्वारा

मुसलमानो मे शिक्षा का प्रचार होने मे बहुत सहायता मिली है। दो बार भारत-सरकार की ओर से नियुक्त किये गये दो कमीशनो के वे सदस्य भी बनाये गये।

सैयद अहमद हिन्दू मुसलमानो की एकता के बहुत पक्षपाती थे। उन का कहना था कि, "हिन्दू और मुसलमान भारत की दो आँखें हैं। दोनो जातियों को मिल कर काम करना चाहिए। यदि हम मिले रहेगे, तो एक दूसरे की सहायता कर सकते हैं; परन्तु यदि एक दूसरे के प्रति बैर-भाव रहा, तो फल यह होगा कि दोनो ही का पतन व नाश हो जायगा।" परन्तु उनके हिन्दू-मुसलमान सम्बन्धी विचारो मे पीछे से कुछ परिवर्त्तन हो गया था। बाद को वे इस नतीजे पर पहुँच गये थे कि मुसलमानो का भला इस मे है कि वे ब्रिटिश सरकार का साथ देते रहे। सन् १८८७ में उन्होने अपने मित्र राजा शिवप्रसाद की सहायता से इण्डियन नेशनल कांग्रेस (भारत की बड़ी राष्ट्रीय सभा) के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ किया, और इस उद्देश्य से एक विरोधी परिषद् भी स्थापित की। इस कार्य से उन्होने हिन्दुओं को कुछ नाराज़ कर दिया।

सन् १८९८ मे सर सैयद अहमद का परलोकवास हो गया। सर सैयद बड़े सच्चे और निर्भीक आदमी थे। जज की पदवी पर रह कर उनके कार्य सदा पक्षपात रहित रहे। वह बड़े हौसले और हिम्मत वाले मनुष्य थे। वह बड़े मिलनसार, नम्र और दयालु थे। उन मे कार्य करने की शक्ति बहुत अधिक थी, और जिस काम के पीछे पड़ जाते थे उसे करके ही छोड़ते थे। उन की वक्तृत्व शक्ति बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। भारत के मुसलमानो के इतिहास में उनका नाम सदा अमर रहेगा।

प्रश्न

१ सर सैयद अहमद खाँ का जन्म कब और कहाँ हुआ ?

२ 'सिपाही विद्रोह' मे सैयद अहमद ने अँगरेजो की क्या मदद की ?

३ उनकी 'विज्ञान परिषद्' नामक सस्था का क्या उद्देश्य था ?

४ उन्होने कौन सा पत्र प्रकाशित किया था, और उसके द्वारा उन्होने कौन सा कार्य किया ?

५ समाज-सुधार के विषयो मे सैयद अहमद के कैसे विचार थे ?

६ मुहमडन कालेज की किस ने और कब स्थापना की ? उसमे कौन सी दो विशेषताएँ थी ?

७ हिन्दू मुसलिम एकता के विषय मे सर सैयद का क्या मत था ?

८ सर सैयद अहमद खाँ ने अपने जीवन मे कौन से बडे-बडे काम किये ?

अध्याय २६

दादाभाई नौरोजी

(भारत के बड़े दादा)

दादाभाई नौरोजी भारत के प्रसिद्ध नेताओं मे से एक थे। आपको हम भारत के गगन-मण्डल का एक उज्ज्वल तारा कह सकते है। आपका जीवन बड़ा ही शिक्षाप्रद और उच्च था। उस से प्रत्येक भारतवासी को शिक्षा लेनी चाहिए।

जैसा नाम से ही मालूम होता है दादाभाई पारसी थे। क्या तुम बतला सकते हो कि पारसी कौन लोग है? ये लोग फारस अर्थात् ईरान के रहने वाले है, और अग्नि के उपासक हैं। कई शताब्दियाँ हुई कुछ धर्मान्ध मुसलमानों के अत्याचारो के कारण ये लोग अपने धर्म की रक्षा करने के उद्देश्य से भारतवर्ष चले-आये थे। जब से ये यहीं रहते है। पारसी शान्ति-प्रिय और धनाढ्य होते है, और इनका व्यवसाय प्रायः व्यापार है।

दादाभाई नौरोजी के पूर्वज ६०० वर्ष से पुजारी थे। इनका जन्म बम्बई में सन् १८२५ ई० मे हुआ था, अर्थात् आज से क़रीब १०० वर्ष पहले। इन के पिता का स्वर्गवास उसी समय हो गया था, जब इनकी अवस्था चार वर्ष की थी। फिर इनकी माता ने इनका पालन-पोषण किया। उन्होंने इनको बड़ी उत्तम शिक्षा दी। बड़े होने पर दादाभाई सदा अपनी माता की प्रशंसा करते रहे। दादाभाई ने स्वयं एक बार लिखा कि, "मैं जो कुछ हूँ हूँ अपनी माता ही के कारण"

दादाभाई का शरीर बलिष्ठ, रंग गोरा और मुख सुन्दर था। इनकी माता ने इनको कटु शब्दों का प्रयोग न करने की विशेष रूप से शिक्षा दी। एक स्थान पर दादाभाई लिखते है कि, "मैंने १५ वर्ष की आयु मे सौगन्द ली थी कि मै अपनी जीभ से कभी कोई भद्दी बात न कहूँगा"। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि दादाभाई आजन्म अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहे।

स्कूल मे पढ़ते समय छोटी अवस्था होने पर भी दादाभाई अपने समय का उपयोग करना ख़ूब जानते थे। कभी-कभी जब दर्जे मे कुछ काम न होता तो यह अपना समय चर्खा कातने, क्रिकेट आदि खेल खेलने और कहानी सुनाने मे बिताते थे। इन को गणित से सदा प्रेम रहा, और इनके सभी अध्यापक इस विषय मे इनकी प्रशंसा करते रहे। दादाभाई पढ़ने मे बड़े तेज़ थे। वह अपनी कक्षा मे सदा प्रथम रहा करते थे, और दर्जे के सारे पारितोषिक उनके ही हिस्से मे आ जाते थे।

स्कूल की शिक्षा समाप्त होने के बाद वह कालेज मे भेज दिये गये। २० वर्ष की अवस्था मे उन्होने बी० ए० की परीक्षा पास की। उस समय से इनकी गिनती 'पश्चिमी भारत के सर्वोत्तम विद्वानो' मे की जाने लगी। इनकी प्रतिभा, विद्वत्ता और चरित्र से प्रसन्न हो कर सर अर्सकिन पैरी नामक जज ने स्वीकार किया कि, "यदि दादाभाई बैरिस्ट्री की परीक्षा पास करने के लिए विलायत जाना चाहे, तो मै उनको आधा व्यय दे सकता हूँ।" परन्तु इस डर से कि विलायत मे पहुँच कर यह कहीं ईसाई न हो जायॅ, इनके स्वजनो ने यह योजना पसन्द नहीं की। यह एक दृष्टि से अच्छा ही हुआ, क्योंकि ऐसा हो जाने पर दादाभाई का जीवन समाज-सेवा मे नहीं लग पाता।

पॉंच वर्ष पीछे दादभाई उसी कालेज मे जिस मे वह पढ़े थे मुख्य अध्यापक नियत किये गये। फिर चार वर्ष पीछे वह एक योरोपियन के स्थान पर उसके देहान्त हो जाने के पीछे प्रोफेसर नियत कर दिये गये। इस पद पर अभी तक किसी हिन्दुस्तानी ने काम नही किया था, इसलिए यह इन के लिए बड़े गौरव की बात थी। इस बीच मे इन्होने बहुत से अच्छे काम कर डाले। इन्होने समाज-सेवा, देश-सेवा, जाति-सेवा और धर्म-सेवा के हेतु अनेक संस्थाएँ खोली और उनमे अविरल परिश्रम किया। इन्होने स्त्री-शिक्षा और विधवा-विवाह के लिए भी बहुत प्रयत्न किया। बम्बई मे पहली लड़कियो की पाठशाला भी इन्ही के प्रयत्न से खुली। दो वर्ष तक यह 'रास्त गुफ़्तार' (अर्थात् सत्यवादी) नामक एक सामाजिक गुजराती साप्ताहिक पत्र का सम्पादन भी करते रहे। बम्बई नगर की अधिकांश वर्तमान उन्नति दादाभाई के ही परिश्रम का फल है।

दादाभाई का प्रवेश व्यापार में भी था। सन् १८५५ ई० मे बम्बई की कामा कम्पनी ने इन को इँगलेण्ड भेजा, क्योकि यह कम्पनी वहॉ भी अपनी एक शाख खोलना चाहती थी। वहाँ जितना भी समय उनको कम्पनी के कार्य से बचता, उसे वह अपने प्यारे देश भारत की सेवा मे लगाते रहे। वहाँ वह अपने देशवासियो के दुख दर्द को ब्रिटिश जनता के सामने रखते थे। उन्होने वहाँ 'लन्दन इण्डिया सुसाइटी' नामक एक संस्था स्थापित की, जो आज तक क़ायम है। इन की योग्यता का लोहा मान कर लन्दन के यूनीवर्सिटी कालेज ने इनको अपने यहाँ गुजराती का प्रोफेसर नियत किया।

इँगलेण्ड मे दादाभाई ने अपना भी एक कारख़ाना खोला। इसमे दुर्भाग्य वश इनको ३ लाख रुपये का टोटा रहा। परन्तु

ईमानदारी से इन्होंने बहुत अच्छी ख्याति प्राप्त कर ली थी। इसलिए कर्जदार संतोषपूर्वक ठहरे रहे, और मित्रो ने भी इनकी इस आड़े समय पर बहुत सहायता की।

सन् १८६९ ई० मे यह बम्बई वापस आ गये। स्वदेश लौटने पर इनका बड़ी धूम धाम से स्वागत किया गया। चार वर्ष पीछे भारत-सरकार ने इनको पार्लिमेण्ट की आर्थिक कमेटी के सामने गवाही देने के लिए इँगलेण्ड भेजा। वहाँ इन्होंने बड़ी निर्भीकता से यह कहा कि भारत अत्यन्त निर्धन देश है, और ब्रिटिश भारत मे एक हिन्दुस्तानी की औसत वार्षिक आय केवल २०) रुपये है। इस बात पर बहुत दिनो तक बड़ा वाद-विवाद चलता रहा। अन्त मे भारत-सरकार की ओर से ही यह बात मान ली गई कि यह आय २७ रुपये से अधिक नही है।

सन् १८७४ ई० मे दादाभाई भारत को लौट आये। यहाँ वह बड़ौदा राज्य के दीवान बनाये गये, क्योंकि राज्य की आर्थिक अवस्था बहुत असंतोषजनक थी। इस पद पर यह दो वर्ष तक रहे, और इन्होंने राज्य की दशा बहुत कुछ सँभाल दी।

बड़ौदा से वापस आकर उन्होंने बम्बई कारपोरेशन मे काम किया। वह उसके सुधार मे लग गये। यहाँ काम करने मे लार्ड-लिटन नामक वाइसराय से उनकी अनबन हो गई, और उनको त्याग-पत्र देना पडा। दूसरे वाइसराय के आ जाने पर उन्होंने फिर कारपोरेशन के सुधार का बीडा अपने सिर पर ले लिया। सन् १८८५ ई० मे वह भारत की लेजिस्लेटिव कौंसिल के सभासद् बनाये गये।

सन् १८८६ ई० मे वह फिर इँगलेण्ड चले गये। यहाँ पहुँच कर एक बडी विचित्र घटना हुई। जिस समय आप
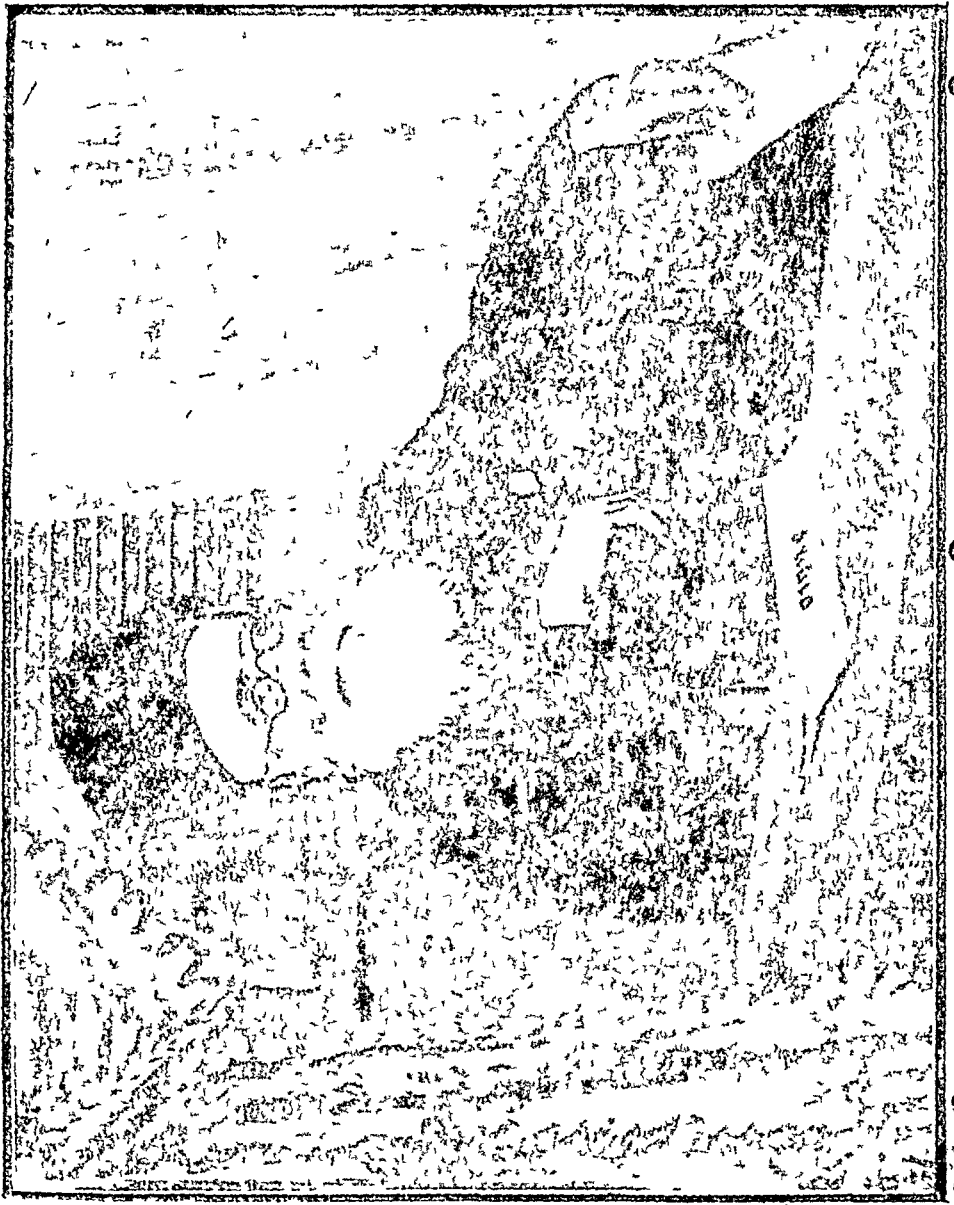
दादाभाई नौरोजी

पार्लिमेण्ट के सदस्य होने का प्रयत्न कर रहे थे लार्ड सेलिसबरी ने आप को काला आदमी कह दिया। बस फिर क्या था! दादाभाई ने इस बात पर घोर आपत्ति की। इँगलिस्तान और भारत दोनो ही देशो मे इस विषय पर बहुत चर्चा होती रही। वास्तव मे दादाभाई का रग लार्ड सेलिसबरी से अधिक गोरा था। अन्त मे लार्ड महोदय को दादाभाई से क्षमा माँगनी पड़ी। वर्ष के अन्त मे आप देश को लौट आये। देश मे 'इण्डियन नेशनल कांग्रेस' नामक संस्था स्थापित हो चुकी थी, और इस वर्ष उसका दूसरा अधिवेशन हो रहा था। दादाभाई इस अधिवेशन के सभापति चुने गये। यह दादाभाई के लिए कम गर्व की बात न थी, क्योकि यही सब से बडा ऊँचा पद था जो देशवासी उन्हे दे सकते थे।

अगले वर्ष फिर उन्हे सरकारी काम से इँगलेण्ड जाना पडा। वहाँ पाँच वर्ष के घोर परिश्रम के पश्चात् वह पार्लिमेण्ट के सदस्य चुन लिए गये। ब्रिटिश साम्राज्य के इतिहास मे यह वडे मार्के की बात थी, क्योकि यह पहले भारतवासी थे जो पार्लिमेण्ट के सदस्य चुने गये। पार्लिमेण्ट मे ३ वर्ष रह कर आपने अपने देश के हित बहुत परिश्रम किया। सन् १८९३ ई० मे जब वह अपने प्यारे देश को वापस आये, तो यहाँ उनका बडा ही धूम-धाम से स्वागत किया गया। वह यहाँ कांग्रेस के नवे अधिवेशन (१८९३) के सभापति चुने गये।

अगले दस वर्ष तक दादाभाई ने वडा कठिन परिश्रम किया। इस बीच मे उन्होने कई सस्थाओ मे वड़ा उपयोगी काम किया। सन् १९०२ ई० मे उन्होने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "भारतवर्ष मे निर्धनता और ब्रिटिश राज्य" प्रकाशित कराई। तीन वर्ष पीछे

वह हालेण्ड गये। वहाँ भी उन्होने व्याख्यानो द्वारा जन्मभूमि की बहुत सेवा की।

सन् १९०६ ई० मे इण्डियन नेशनल कांग्रेस के सभापति वह फिर तीसरी बार चुने गये। सन् १९०७ ई० मे वह इङ्गलेण्ड गये। वहाँ उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया। दादाभाई अब सचमुच दादा हो चुके थे, क्योंकि इस समय उनकी अवस्था ८१ वर्ष की हो गई थी। डाक्टरो ने उनको भारत लौट जाने का परामर्श दिया। यहाँ लौटने पर उनका बड़े जोर से स्वागत किया गया। उनको बड़ी बधाइयाँ दी गई। यहाँ तक कि वाइसराय (बड़े लाट) तक ने उनको वयोवृद्ध होने पर बधाई दी। अब सब लोग उन्हें 'भारत के बड़े दादा' (Grand Old Man of India कहने लगे।

परन्तु दुष्ट काल से किस का बस चल सकता है? सन् १९१९ ई० मे ९१ वर्ष की अवस्था मे दादाभाई परलोकवासी हुए। उनकी मृत्यु से सारे देश मे हाहाकार मच गया। भारतवर्ष मे ही क्या इँगलेण्ड मे भी उनकी मृत्यु पर शोक मनाया गया। दादाभाई आज इस असार संसार मे नहीं है, परन्तु उनके कार्य अब भी जीवित हैं। बालको! इस जीवन-चरित्र को पढ़ कर तुम मे से किस के हृदय मे ये भाव नहीं जागृत होते होंगे कि तुम भी दादाभाई की तरह घोर परिश्रम करके अपने देश व समाज की सेवा करते हुए उतना ही नाम पाओ जितना कि 'भारत के बड़े दादा' ने पाया था?

प्रश्न

१ पारसी कौन लोग है? इनका मुख्य व्यवसाय क्या है?

२ दादाभाई का जन्म कब और कहाँ हुआ?

३ इन्होंने अपनी माता की प्रशंसा किस प्रकार की है ?

४ दादाभाई वैरिस्ट्री पास करने इङ्गलेंड क्यों नहीं भेजे गये ?

५ सिद्ध करो कि दादाभाई का प्रवेश व्यापार में भी था ?

६ दादाभाई कितनी बार इङ्गलेण्ड गये ? प्रत्येक बार उन्होंने वहाँ क्या-क्या काम किया ?

७ उनके देशवासियों ने दादाभाई का किस प्रकार मान किया ?

८ बूढे होने पर दादाभाई किस नाम से पुकारे जाने लगे थे ?

९ दादाभाई के जीवन से तुम्हें क्या शिक्षा मिलती है ?
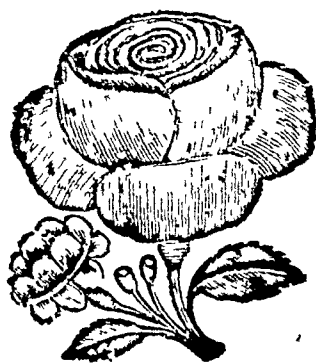
अध्याय २७

महारानी विक्टोरिया

(संसार की सब से बड़ी महारानी)

बालको ! क्या तुमने अपने वर्त्तमान सम्राट् का नाम सुना है ? उनका चित्र तुमने सिक्को पर अक्सर देखा होगा। वह इँगलेण्ड में रहते है और उनका नाम महाराज पंचम जार्ज है।

इस पाठ मे हम तुमको उन्ही की दादी महारानी विक्टोरिया का कुछ हाल बतलायेगे।

महारानी विक्टोरिया

इँगलेण्ड के राजा तीसरे जार्ज के पुत्र ड्यूक ऑफ़ केण्ट के यहाँ महारानी विक्टोरिया ने २४ मई सन् १८१६ ई० को जन्म लिया। इनकी माता का नाम महारानी विक्टोरिया मेरियालु था। जब यह

साल भर की हुई तभी इनके पिता का देहान्त हो गया। पाँच वर्ष की अवस्था से इन का पढ़ना लिखना आरम्भ हो गया था। महारानी विक्टोरिया बचपन से ही बड़ी तीव्र बुद्धि वाली थी। ११ वर्ष की अवस्था मे आपने जर्मन और फरासीसी दोनो भाषाओ की अच्छी योग्यता प्राप्त करली थी। इस अवस्था मे ही आप इन दोनो भाषाओ को अच्छी तरह बोल भी सकती थी। इस के पीछे आप ने लेटिन, अँग्रेज़ी और यूनानी भाषाएँ भी पढ़ी और उन से अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। कई भाषाओ का ज्ञान प्राप्त कर लेने के अतिरिक्त आप को गणित और चित्रकला मे विशेष रुचि थी। आप प्रायः चित्र खींचा करती थी। गाने-बजाने का भी आप को बड़ा चाव था, और उस मे अच्छी तरह निपुण हो गई थी।

महारानी विक्टोरिया के पिता के देहान्त हो जाने के पश्चात इन के दोनो चचा एक दूसरे के बाद गद्दी पर बैठे। परन्तु उन के कोई सन्तान न हुई। इसलिए महारानी विक्टोरिया ही अपने चचा की मृत्यु के बाद गद्दी पर बैठी। गद्दी पर बैठते समय उन की अवस्था १८ वर्ष की थी। इन का राज्याभिषेक बड़ी धूम-धाम से हुआ। राज-सिहासन पर बैठने के पीछे इन्होने एक पत्र अपनी माता को लिखा, जिसमे इन्होने यह लिखा था कि, "मुझे बादशाह की मृत्यु हो जाने पर अत्यन्त शोक है। मै ईश्वर से प्रार्थना करती हूँ कि वह मुझे इतने बड़े राज्य का शासन चलाने के लिए बुद्धि दे"। सिहासन पर बैठने के थोड़े दिन पीछे महारानी ने अपना विवाह जर्मनी के एक राजकुमार से जिनका नाम अलबर्ट था कर लिया। यह एक बड़े ही सज्जन और बुद्धिमान पुरुष थे। महारानी विक्टोरिया राजकुमार अलबर्ट के

साथ अपना विवाह हो जाने से अति प्रसन्न थीं और राज-काज उन्हीं की सम्मति से चलाती थीं। राजकुमार अलबर्ट भी महारानी को उनके राज्य के कार्यों मे बहुत सहायता करते थे। दोनो स्त्री-पुरुषों मे अत्यन्त प्रेम था। महारानी बहुत ही सुन्दरी, रूपवती और योग्य स्त्री थीं। इसलिए अनेको मनुष्य इन से विवाह करने के इच्छुक थे। यही कारण था कि इनके विवाह के पहले तथा कुछ दिन बाद भी कितने ही उपद्रव हुए। यहाँ तक कि महारानी पर कई बार इन्हें मारने की नीयत से गोली भी चलाई गई, परन्तु वह बच गई। एक बार जब महारानी अपने पति के साथ संध्या समय हवा खाने जा रही थीं, तो एक आदमी ने उन पर गोली चलाई। वह मनुष्य पकड़ा गया। परन्तु पीछे से यह सिद्ध होने पर कि वह पागल है छोड़ दिया गया।

महारानी अपने पति के साथ प्राय' पैदल ही टहलने जाया करती थीं, एक दिन महारानी अपने पतिदेव के साथ सुबह के समय एक गाँव की ओर टहलने गई, तो वहाँ से लौटते समय उन्हे देर हो गई, और पैदल चलने से कुछ थकावट भी आ गई थी। इस कारण दोनो पति पत्नी एक गड़रिये के यहाँ पहुँचे और उसी की झोपड़ी मे अपनी थकावट दूर करने के लिए ठहर गये। गड़रिये की स्त्री को क्या मालूम था कि उसके अतिथि महारानी और उनके पति है। परन्तु फिर भी उसने इन दोनो की बड़ी आवभगत की। गड़रिया और उसकी स्त्री ने गरम-गरम रोटियाँ खिला कर और ठण्डा पानी पिला कर महारानी की सारी थका-वट दूर कर दी। महारानी और उन के पति गड़रिये की स्त्री के हाथ की चपाती उनके टूट-फूटे बर्तनों में खा कर अति प्रसन्न हुए।

चलते समय महारानी ने जब अपने को महारानी प्रकट किया, तो वे लोग बड़े प्रसन्न हुए। उस गड़रिये के कुटुम्ब मे आज तक वे बर्तन जिनमे महारानी और उनके पतिदेव ने भोजन किया था स्मारक-स्वरूप रक्खे हुए है।

इस घटना से ज्ञात होता है कि महारानी अपनी प्रजा को कितना चाहती थी। उनके हृदय मे दया बहुत थी। जब कभी किसी फाँसी की सजा पाये हुए अभियुक्त की स्वीकृति महारानी से प्राप्त की जाती थी, तो वह कभी भी किसी को फॉसी की आज्ञा न देती थी। इसी कारण से इङ्गलेण्ड की पार्लिमेण्ट ने पीछे से फॉसी की आज्ञा पर बादशाह के हस्ताक्षर होने का नियम रद कर दिया। महारानी को अपनी प्रजा से बड़ी सहानुभूति थी। उन्हे उस के सुख दुख का सर्वदा ध्यान रहता था। इन्हीं के शासन-काल मे एक बार आयर्लेण्ड मे बड़े ज़ोर का अकाल पड़ा। सैकड़ो-हजारो मनुष्य भूख से मरने लगे। इसके लिए एक बड़ी भारी प्रदर्शनी खोली गई, जिस से दूसरे देशो के साथ व्यापारिक सम्बन्ध हो जाने से अन्न की आय हो गई और लाखो मनुष्यो के प्राण बच गये।

महारानी के कुल ६ सन्ताने हुई। जिनमे सब से बड़ी एक कन्या थी, जिसका व्याह जर्मन-सम्राट् से हुआ था। दूसरी सन्तान सप्तम एडवर्ड थे, जो उनकी मृत्यु के बाद गद्दी पर बैठे। शेष ७ सन्तानो मे से तीन का देहान्त हो गया। सन् १८६१ ई० मे महारानी के पति राजकुमार अलबर्ट का स्वर्गवास हो गया। महारानी ने राजकुमार अलबर्ट के साथ २२ वर्ष जीवन व्यतीत किया। राजकुमार अलबर्ट शतरंज के बड़े खिलाड़ी थे। राज-काज से अवकाश पाकर रात के समय महारानी के साथ

प्रायः शतरंज खेलना उनका नित्य कर्म था। अपने पति के स्वर्गवास हो जाने के पश्चात् महारानी ने अपना जीवन एक हिन्दू बिधवा की तरह से बिताया। अपने लिए उन्होंने प्रायः सारे नाच-रंग, खेल-तमाशे बन्द कर रक्खे थे। कभी किसी उत्सव में सम्मिलित नहीं होती थी, और सारा समय राज-काज तथा ईश्वर-भजन मे ही बिताती थी।

सन् १८५७ ई० मे भारतवर्ष मे विद्रोह हो जाने के कारण यहाँ का शासन ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथ से निकल कर महारानी के हाथ में आया। अब आप भारत की राजराजेश्वरी कहलाईं। आपने भारत का शासन अपने अधिकार में आते ही एक घोषणा प्रकाशित की जिसमे लिखा था कि, "मेरे राज्य मे सभी धर्मों और मतो को पूर्ण स्वतन्त्रता रहेगी। क़ानून की दृष्टि मे सब के साथ एक सा व्यवहार किया जायगा, और सरकारी नौकरियाँ बिना जाति भेद के सभी को दी जायँगी।"

जब महारानी को राज्य करते हुए पचास वर्ष हो गये, तो इस दीर्घ शासन के उपलक्ष में एक बड़ा भारी उत्सव मनाया गया, जो "स्वर्ण जुबिली" के नाम से प्रसिद्ध है। यह उत्सव भारत मे भी मनाया गया, परन्तु लंदन में यह विशेष धूम-धाम से मनाया गया। भारतवर्ष के प्रायः सभी राजे-महाराजे इस उत्सव में सम्मिलित होने के लिए इङ्गलैण्ड गये थे। इसके दस वर्ष पीछे जब महारानी को शासन करते हुए ६० वर्ष हो गये, तो दूसरा महोत्सव फिर धूम-धाम से मनाया गया जो, "हीरक जुबिली" के नाम से प्रसिद्ध है।

महारानी अपनी भारतीय प्रजा से बहुत प्रेम रखती थी। वह उस पर बड़ी दयालु थी और उसके सुख-दुख का सदा

यान रखती थीं। ऐसी दयालु महारानी ६३ वर्ष शासन करने के पश्चात् २२ जनवरी सन् १६०१ ई० को इस संसार से चल बसीं। आप के स्वर्गवास से आपकी प्रजा को अत्यन्त शोक हुआ। आप के पीछे राजकुमार प्रिंस ऑफ वेल्स एडवर्ड सप्तम के नाम से राजगद्दी पर बैठे।

प्रश्न

१ महारानी विक्टोरिया का जन्म कब हुआ था ?

२ उनकी शिक्षा किस प्रकार हुई ?

३ राज्य सिंहासन पर बैठने के पश्चात् विक्टोरिया ने अपनी माता को क्या पत्र लिखा ?

४ राजकुमार अलबर्ट कौन थे ?

५ ऐसी कोई घटना बताओ, जिससे यह सिद्ध होता हो कि महारानी अपनी प्रजा को बहुत चाहती थीं ?

६ फाँसी की आज्ञा पर सम्राट् के हस्ताक्षर का क़ानून पार्लिमेण्ट ने क्यों रद्द कर दिया ?

७ आयर्लेंड में अकाल के समय महारानी ने क्या किया ?

८ महारानी की कितनी सन्तान थीं ? उनके विषय में तुम क्या जानते हो ?

९ भारत का शासन हाथ में आते ही महारानी ने क्या घोषणा प्रकाशित की ?

१० 'स्वर्ण जुबिली' और 'हीरक जुबिली' से तुम क्या समझते हो ?

११ महारानी विक्टोरिया का स्वर्गवास कब हुआ ?

अध्याय २८

सम्राट् जार्ज पंचम

(संसार के सब से बड़े राजा)

बालको ! तुमने पिछले पाठ मे महारानी विक्टोरिया का हाल पढा था। इस पाठ मे हम तुमको उनके पोते सम्राट् जार्ज पंचम का हाल बतलायेगे। अँगरेजो का राज्य संसार के छठे भाग पर है। ऐसा बड़ा राज्य संसार मे आज तक किसी का नहीं हुआ है। तुम्हारी ऐटलस मे दुनियाँ मे लाल रंग से अँग्रेजो का राज्य दिखलाया गया है। इस समस्त भाग के राजा जार्ज पचम है। हमारा देश भी इस विशाल साम्राज्य का एक भाग है।

सम्राट् का जन्म ३ जून सन् १८६५ ई० को लन्दन नगर मे हुआ था। जन्म के समय तोपो की सलामी दी गई, ख़ुशी के नगाड़े बजाये गये, गिरजो में घंटे बजाये गये, और तारो के द्वारा यह शुभ समाचार संसार के कोने-कोने मे पहुँचा दिया गया। चारो ओर से बधाई के समाचार आये, और प्रत्येक मुँह पर ये शब्द थे कि 'भगवान महारानी विक्टोरिया के पोते को चिरायु करे।'

सम्राट् का बचपन बड़े लाड़-प्यार से व्यतीत हुआ, जब आप चार वर्ष के हुए, तो आपकी शिक्षा आपकी माता की देख-रेख में आरम्भ हुई। आपकी शिक्षा के लिए एक पादरी भी नियत किया गया। पादरी के अतिरिक्त एक कहानी कहने वाला भी नियुक्त किया गया, जो आपको सदा समुद्रो की बड़ी विचित्र

कहानियाँ सुनाया करता था। इन कहानियो को सुन कर आपके हृदय मे बडा जोश आता था, और आप उस दिन की वाट जोहने लगते थे जब आप स्वय अपनी वीरता का परिचय समुद्र पर दे सके।

वचपन से ही राजकुमार चंचल थे। एक वार आप अपनी दादी महारानी के साथ मेज पर भोजन कर रहे थे। आपने ऊधम किया। महारानी ने दो-एक वार आप से मना किया, जब आप न माने, तो आपको आज्ञा दी कि, 'मेज़ के नीचे चले जाओ, और जब तक अच्छे लड़के न बनो वाहर न आओ'' राजकुमार ने तुरन्त दादी की आज्ञा मान ली। परन्तु मेज के नीचे घुसते ही अपने कपड़े उतारना आरम्भ कर दिया। जब थोड़ी देर पीछे दादी ने आज्ञा दी कि, "अब निकल आओ" तो आप फौरन ही नगे निकल पड़े। महारानी यह देख कर हस पड़ी, और उनको कपड़े पहना कर प्रेम से अपने पास वैठा कर कहने लगी, "जो पहले दूसरो की आज्ञा मानना सीखते है, वही आगे चल कर दूसरो को आज्ञा देना भी सीख सकते है।"

साधारण शिक्षा के अतिरिक्त आपको खेतीवारी, वागवानी, चित्रकारी आखेट आदि की भी शिक्षा दी गई थी। इस से आपको अपने हाथ से प्रत्येक काम करने की आदत पड़ गई थी। वारह वर्ष की अवस्था होने पर जब आपकी प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त हुई, तो आपको समुद्री शिक्षा देने का प्रबन्ध किया गया। आप एक लडाकू जहाज़ पर भेज दिये गये, यहाँ अन्य दो-ढाई सौ लड़को के साथ आपने शिक्षा प्राप्त की। यहाँ आपकी शिक्षा बिल्कुल साधारण बालको की भाँति हुई। आप उसी प्रकार काम करते थे जैसे अन्य बालक। यहाँ पर आपको कोयले ढोने वाले

और इञ्जिन मे कोयला झोकने वाले खल्लासी तक का भी काम करना पड़ा। ऐसे समय पर आपके मैले और काले हाथ-पॉव देख कर भला कौन कह सकता था कि आप इगलिस्तान के राजकुमार है।

जिन दिनो आप जहाज़ पर काम करना सीख रहे थे, एक वार ऐसा हुआ कि आप के जहाज़ ने तुर्की के एक बन्दर सालोनिका मे कोयला-पानी लेने के लिए लंगर डाला। वहॉ के तुर्की अफ़सर को जब मालूम हुआ कि इस जहाज़ मे इॅगलिस्तान की महारानी विक्टोरिया के पोते राजकुमार जार्ज है तो वह शीघ्र ही जहाज़ के कप्तान से मिले, और राजकुमार से मिलने की इच्छा प्रगट की। कप्तान ने राजकुमार को वुलवा भेजा। इस समय वह कोयला ढो रहे थे, और उसी भेस मे चले आये। उन को देख कर तुर्की अफ़सर कप्तान से वोला, "आप दिल्लगी क्यो कर रहे है? मै तो राजकुमार से मिलने आया हूॅ, न कि एक कोयला ढोने वाले से।" इस पर कप्तान ने उत्तर दिया, "महाशय, मै मजाक नही करता हूॅ। प्रिंस जार्ज यही है। यह इस समय कोयला ढो रहे थे और विना कपड़े बदले हुए ही आप से मिलने चले आये है।" तुर्की अफ़सर को वड़ा आश्चर्य हुआ, और उसे कप्तान की वातो पर विश्वास न हुआ। परन्तु जब उसने देखा कि सभी लोग उन्हे राजकुमार कह कर सम्वोधन कर रहे थे, तो उनको विश्वास हो गया कि यही राजकुमार जार्ज है, वाद को इस तुर्की अफ़सर ने कहा कि, "जहॉ के राजाओ की यह दशा हो, वह देश क्यो न उन्नति करे।"

दो वर्ष मे आपकी समुद्र शिक्षा समाप्त हो गई। फिर आपको सैर की सूझी। आपने जहाज़ पर लगभग सारे संसार

का भ्रमण कर डाला। जापान, मिश्र अफ्रीका, अमरीका, आस्ट्रेलिया, चीन आदि सभी देशो की आपने सैर की। जहाँ कहीं आप पहुँचे, आप से मिल कर सभी लोग बहुत प्रसन्न हुए। आपका कोमल और हँसमुख स्वभाव तुरन्त सब के हृदय मे घर कर लेता था।
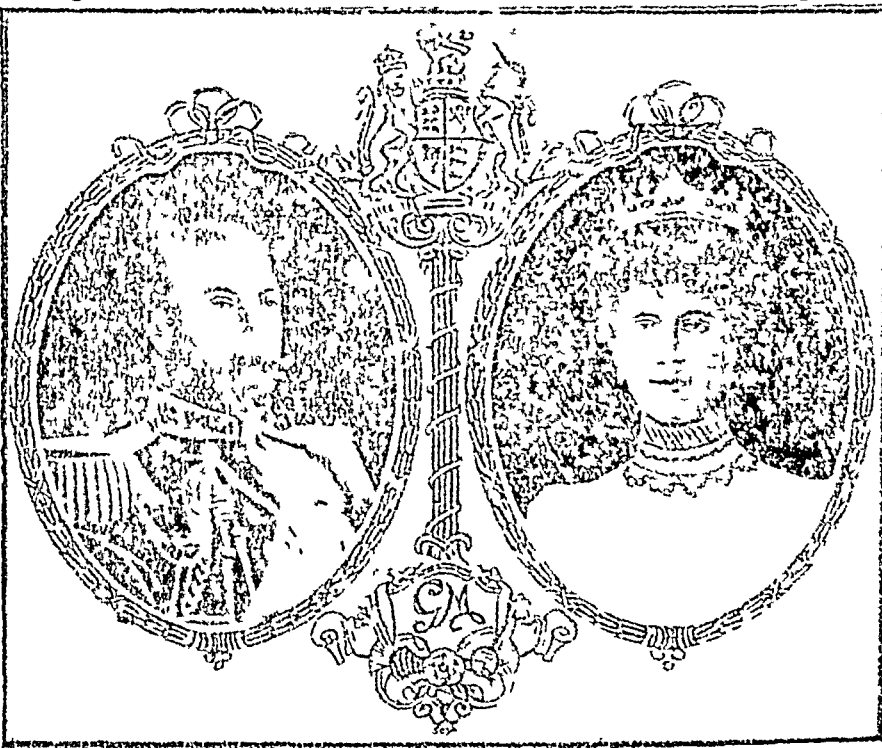
सम्राट् जार्ज पचम और महारानी मेरी

सन् १८९२ ई० मे आपके बडे भाई की मृत्यु हो गई। इसलिए आपको जहाज़ का काम छोड कर राज के कामो की ओर अधिक ध्यान देना पडा। एक वर्ष पीछे अर्थात् २८ वर्ष की

अवस्था में आपका विवाह इँगलिस्तान के एक राजघराने में कुमारी मेरी के साथ बड़ा धूम-धाम से हुआ।

सन् १६०१ ई० मे महारानी विक्टोरिया का स्वर्गवास हो गया, और उनके ज्येष्ठ पुत्र ऐडवर्ड सप्तम गद्दी पर बैठे। अब राजकुमार जार्ज 'प्रिंस आफ् वेल्स' कहलाने लगे। इसके कुछ दिन पीछे आप अपनी पत्नी सहित भारत मे पधारे, और यहाँ के बहुत से लोगो से मिल कर आपने भारत की सच्ची दशा जानने का प्रयत्न किया।

सन् १६१० मे सम्राट् एडवर्ड सप्तम का देहान्त हो गया, और राजकुमार जार्ज 'जार्ज पंचम' के नाम से राज-सिंहासन पर बैठे। इँगलिस्तान में आपका राज्याभिषेक बड़ी धूम-धाम से मनाया गया। आपने इच्छा प्रकट की कि हमारा राज्याभिषेक भारत मे भी हो। इसलिए १२ दिसम्बर सन् १६१२ ई० मे दिल्ली मे आपका राज्याभिषेक बडे समारोह के साथ मनाया गया। राजे और नवाब, धनी और कंगाल, स्त्री और पुरुष, बड़े और छोटे सभी लाखो की संख्या मे उत्सव मे शामिल हुए। सब ने ईश्वर से प्रार्थना की कि सम्राट् चिरायु होवे। आपने भारत के कई नगरो मे भ्रमण किया। जब आपने इस भूमि को छोड़ा तो कहने लगे कि "भारत विशाल और सुन्दर देश है, और मुझे प्यारा है।"

महायुद्ध (सन् १६१४-१८ ई०) मे हिन्दुस्तानी सिपाही कई देशो मे लड़े थे, और वहाँ उन्होंने अपनी वीरता का अच्छा परिचय दिया था। इस पर सम्राट् ने उनके प्रति कृतज्ञता प्रकाशित की।

सम्राट जार्ज बड़े ही दयालु और हँसमुख हैं। आप सदा प्रसन्न चित्त रहते हैं। समुद्री जीवन से आपको बहुत प्रेम है, इसलिए आपको 'केवट राजा' भी कहते हैं। आपको व्यायाम

प्रिंस एडवर्ड

से बहुत शौक़ है। क्रिकिट, फुटबौल, घूँसेबाजी, घुड़दौड़, शिकार आदि के आप बड़े प्रेमी हैं। छोटे बच्चों के साथ बातचीत करने और खेलने में आपको बड़ा मज़ा आता है। अपाहिज और

गरीबों से आपको बहुत सहानुभूति है। पुराने स्टाम्प जमा करने की आपको बहुत धुन रहती है। सम्राज्ञी मेरी भी अत्यन्त सुशील है। आप अपने पति की सेवा में रात-दिन लगी रहती है। अपने पति की भाँति आपको भी प्रजा पर बड़ा प्रेम है और उसकी भलाई की चिन्ता में सदा निमग्न रहती हैं।

सन् १६२६ ई० में सम्राट् को एक भयंकर रोग ने आ घेरा। ब्रिटिश साम्राज्य के अन्य देशों की भाँति सारे भारत में आपके नीरोग होने की प्रार्थनाएँ की गई। कई महीनों की बीमारी के बाद आप चंगे हो गये। ईश्वर आपको चिरायु करे।

प्रश्न

१ सम्राट् जार्ज पंचम का जन्म कब हुआ ?
२ सम्राट् के बचपन की कोई कहानी बताओ।
३ सम्राट् जार्ज को 'केवट राजा' क्यों कहते हैं ?
४ अपने हाथ से सब काम करने से सम्राट् के चरित्र पर क्या प्रभाव पड़ा ?
५ सम्राट् का विवाह कब और किसके साथ हुआ ?
६ सम्राट् के कुछ गुणों का वर्णन करो।